२८२५१

दिनांक	सदस्य संख्या	दिनांक	सदस्य संख्या

मनोरंजन पुस्तकमाला-७

सम्पादक

इयामसुंदर दास, बी० ए०

प्रकाशक

काशी नागरीप्रचारिणी सभा।

राणा जंगबहादुर।

लेखक

जगन्मोहन वर्म्मा।

१९१५

लीडर प्रेस प्रयाग में मुद्रित

मूल्य १)

भूमिका

तर्कोऽप्रतिष्ठः श्रुतयो विभिन्ना।
नैको मुनिर्यस्य वचः प्रमाणम्।
धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां।
महाजनो येन गता स पंथा॥ महाभारत॥

बचपन में मेरी पूज्य स्वर्गीय माता जो नैपाल देश की थीं मुझसे महाराज जंगबहादुर की अनेक अद्भुत कथाएँ कहा करती थीं। उन्होंने महाराज जंगबहादुर को अपनी आँखों देखा था और उनके पिता मेरे मातामह भैया शिवदीन लाल नैपाल दर्बार में एक उच्च पदाधिकारी थे। महाराज जंगबहादुर ने उन्हीं पर नैपाल की तराई के प्रबंध का भार छोड़ रक्खा था। तराई में अब तक यह जनश्रुति कही जाती है 'तरहटिया के तीन सपूत, भैय्या बाबा दम्मनपूत'।

मुझे बचपन ही से महाराज जंगबहादुर के चरित्र जानने की बड़ी उत्कंठा रहती थी और जब कभी मैं तराई में अपनी ननिहाल में, जो लुंबिनी के पास है, जाता था तो मैं अपने मामा आदि से आग्रह करके महाराज के चरित्र को बड़े चाव से सुनता था और उनके वीरोचित कार्य्यों को सुन मेरा हृदय गद्गद् हो जाता था।

स्वर्गवासी नैपाली साधु बाबा माधवानंद सरस्वती जो

मेरे यहाँ वर्षों रहे हैं एक नैपाली भाषा का गीत गाया करते थे, जिसमें महाराज के वीरोचित कामों का अच्छा वर्णन था उसे सुन कर मुझे बड़ा आनंद मिलता था और मैं उन्हें प्रायः उस गीत के गाने के लिये कष्ट दिया करता था। मुझे महाराज जंगबहादुर के चरित्र से बचपन ही से बड़ा प्रेम है और मैं उन्हें आदर्श पुरुष और उनकी जीवनी को आदर्श जीवनी मानता हूँ।

इस वर्ष जब बाबू श्यामसुंदर दास जी ने मनोरंजन ग्रंथमाला निकालने का विचार प्रकट किया और वे उसके लिये पुस्तकों की सूची बनाने लगे तो मैंने उक्त बाबू साहब से महाराज जंगबहादुर की जीवनी भी उस ग्रंथमाला में रखने के लिये सानुरोध कहा, जिसे बाबू साहब ने स्वीकार करके मुझे उस महापुरुष की जीवनी लिखने की आज्ञा दी। मैंने बाबू साहब की आज्ञा को माथे पर चढ़ा महाराज जंगबहादुर की जीवनी अपनी टूटी फूटी भाषा में लिखी, जिसे आज आप के सामने मैं प्रस्तुत करता हूँ। आशा है कि आप लोग इसे अपना कर मुझे अनुगृहीत करेंगे।

महाराज जंगबहादुर ने क्या किया, इसका हाल तो आप को उनकी जीवनी के पढ़ने से मालूम हो ही जायगा पर इतना मैं यहाँ आप लोगों से कहे देता हूँ कि वे एक अलौकिक पुरुषार्थ-परायण पुरुष थे जिन्होंने अपने पुरुषार्थ से भाग्य को ठोकर लगा कर अपना दास बनाया। उनमें कई एक विचित्र

गुण एकत्रित हुए थे जो प्रायः एक स्थान में नहीं देखे जाते। वे सच्चे शूरवीर क्षत्रिय होते हुए राजनीतिज्ञ और प्रबंध कुशल थे तथा कट्टर हिंदू होते हुए वे उदार विचार के सुधारक थे।

मुझे इस पुस्तक के लिखने में उनकी अंग्रेजी जीवनी से जो उनके पुत्र जरनल पद्मजंग ने लिखी है बड़ी सहायता मिली है जिसके लिये मैं उनका कृतज्ञ हूँ।

महाराज जंगबहादुर का चित्र मुझे काशी के पंडित हरिहर शर्म्मा की कृपा से प्राप्त हुआ है जिसके लिये मैं उनका अत्यंत अनुगृहीत हूँ।

काशी, १-७-१४ जगन्मोहन वर्म्मा।

सूची

राणा जंगबहादुर ।

१—वंशपरंपरा ।

नैपाल के इतिहासकारों का मत है कि नैपाल का राणा-वंश चित्तौर के गोहलौत राजवंश की शाखा है जिसमें हिंदू-सूर्य्य प्रातःस्मरणीय महाराणा प्रताप का जन्म हुआ था। राजपूताने के प्रसिद्ध इतिहासज्ञ कर्नल टाड साहब का कथन है कि चित्तौर के रावल समरसिंह का एक राजकुमार चित्तौर के ध्वंस होने पर भाग कर नैपाल के पहाड़ में चला गया और वही नैपाल के गोहलौत राजपूतों का मूल पुरुष हुआ। इसी नैपाली राणा वंश में नैपाल के प्रसिद्ध वीर राजनीतिज्ञ महाराज जंगबहादुर का जन्म हुआ था। *

अठारहवीं शताब्दी में नैपाल बहुत से छोटे छोटे राज्यों में विभक्त था। भाटगाँव, कांतिपुर (काठमांडव) और ललितापट्टन में विसेन वंशी मल्ल राजाओं का राज्य था। जुमला, लमजंग इत्यादि पहाड़ी प्रदेशों में छोटे छोटे अनेक पहाड़ी

---

* Another son (of Samar Singh) either on this occasion or on the subsequent fall of Cheetore, fled to the mountain of Nepal, and there spread the Gehlote line. Tods' Rajasthan Ch. V.

राजे राज्य करते थे। अठारहवीं शताब्दी के मध्य में गोरखा राजा पृथ्वीनारायणशाह ने जब भाटगाँव, कांतिपुर और ललितापट्टन के राजाओं से युद्ध प्रारंभ किया तो उनके प्रधान सेनापति राणा रामकृष्ण ने अपनी युद्ध-कुशलता से उनकी बड़ी सहायता की थी। कहते हैं कि जब महाराज पृथ्वीनारायणशाह भाटगाँव, कांतिपुर और ललितापट्टन के राजाओं को पराजित कर वहाँ अपना एकाधिपत्य राज्य स्थापन कर चुके तो उन्होंने रामकृष्ण से अपनी इस सेवा के लिये पुरस्कार माँगने के लिये कहा। पर स्वामिभक्त रामकृष्ण ने उत्तर दिया कि मैं आप से अपनी इस सेवा के पुरस्कार में न भूमि चाहता हूँ और न संपत्ति, मैं केवल यही प्रार्थना करता हूँ कि आप मुझे यह आज्ञा दें कि मैं अपने व्यय से गुंजेश्वरी से पशुपतिनाथ तक एक पत्थर की सड़क बनवा दूँ। अस्तु जो सड़क महाराज पृथ्वीनारायणशाह के आज्ञानुसार उनके स्वामिभक्त सेनापति राणा रामकृष्ण ने बनवाई थी वह अब तक नैपाल में मौजूद है।

इन्हीं राणा रामकृष्ण के एक मात्र पुत्र राणा रणजीतकुमार थे जिन्हें महाराज पृथ्वीनारायणशाह ने उनके पिता के मरने के थोड़े ही दिनों बाद जुमला प्रदेश का हाकिम नियत किया। इस जुमला प्रदेश को विजय किए थोड़े ही दिन हुए थे और वहाँ के लोगों ने बड़ा उपद्रव मचा रक्खा था। नए शासन में आने के कारण वहाँ चारों ओर अशांति फैली हुई थी। रणजीत ने अपनी चतुरता से वहाँवालों को दबा उनमें

शांति स्थापन कर महाराज पृथ्वीनारायणशाह के शासन को वहाँ दृढ़ कर दिया। उनके इस काम से प्रसन्न हो महाराज पृथ्वीनारायणशाह ने रणजीतकुमार को अपने प्रधान चार काजियों* में नियत किया।

महाराज पृथ्वीनारायणशाह के परलोक प्राप्त होने पर काजी रणजीत राणा ने, उनके पुत्र महाराज सिंहप्रताप के समय में सोमेश्वर और उपद्रंग के प्रांतों को विजय कर गोरखा साम्राज्य में मिलाया और छः वर्ष पीछे, महाराज सिंहप्रताप के पुत्र महाराज रणबहादुरशाह के समय में उन्होंने तन्हू, कस्की और लमजंग नामक पहाड़ी प्रदेशों को जीत कर गोरखा साम्राज्य में मिला दिया। सन् १७९१ में जब नैपाल और तिब्बत के बीच लड़ाई ठनी तो रणजीतकुमार ने उसमें अपना बड़ा कौशल दिखाया और जीतपुर फट्टी की लड़ाई में तिब्बतियों और चीनियों की सेना को सितंबर सन् १७९२ में परास्त किया। कमाऊँ की लड़ाई में भी उन्होंने अपनी बड़ी दक्षता प्रदर्शित की थी और कमाऊँ के राजा को पराजित कर भगा दिया था, पर जब वहाँ के राजा संसारचंद ने पंजाब-केशरी महाराज रणजीतसिंह की सहायता से फिर युद्ध आरंभ किया तब रणजीतकुमार रणभूमि में मारे गए।

राणा रणजीतकुमार के तीन लड़के थे—बालनरसिंह,

---

* नैपाल देश के वह कर्म्मचारी जो दीवानी के मुकद्दमों का फैसला करते ह।

बलराम और रेवत। इनमें बालनरसिंह सब से बड़े थे और इन्हीं की द्वितीय पत्नी से वीर जंगबहादुर का जन्म हुआ। बालनरसिंह अपने पिता के जीवन काल में ही अपनी क्षत्रियोचित वीरता के कारण काजी पद पर नियुक्त हुए। एक दिन की बात है कि बालनरसिंह दर्बार में बैठे हुए थे। उन्हें पास के एक दीवानखाने से किसी के चीखने का शब्द सुनाई पड़ा। बालनरसिंह उस आर्त नाद को सुन कर बेधड़क अपनी तलवार लिए उस दीवानखाने में घुस गए। दीवानखाने में घुसने पर उन्हें एक अत्यंत भीषण घटना दिखाई पड़ी। महाराज रणबहादुरशाह छाती में कटार खाए हुए रक्त में पड़े लोहूलोहान लोट रहे थे और उनका घातक उन्हीं का वैमात्रिक भाई शेरबहादुर भागने का प्रयत्न कर रहा था। ऐसे समय पर भला बालनरसिंह से कब चुप रहा जाता, उन्होंने झपट कर शेरबहादुर की टाँग पकड़ कर उसे वहीं धर पटका और अपनी तलवार से उस पर आघात किया। पर दीवानखाने की छत बहुत नीची थी और तलवार छत में अटक गई, इससे उनका पहला वार खाली गया। जब बालनरसिंह ने शेरबहादुर पर दूसरा वार किया तो शेरबहादुर ने फुर्ती से उनकी तलवार छीन कर अलग फेंक दी जिससे वह टूक टूक हो गई। फिर तो बालनरसिंह और शेरबहादुर में कुश्ती होने लगी जिसमें बालनरसिंह ने शेरबहादुर को धर पछाड़ा और वे उसे पटक कर उसकी छाती पर चढ़ बैठे और उन्होंने उसका

गला घोट कर उसे मार डाला। बालनरसिंह की इस वीरता से प्रसन्न हो महाराज रणबहादुरशाह के मरने पर उनके पुत्र महाराज गीर्वाणयुद्धविक्रमशाह ने उन्हें काजी नियत किया।

बालनरसिंह वीर होने के अतिरिक्त एक तपस्वी और धर्म-परायण पुरुष थे। उनका यह नित्य नियम था कि वे सूर्य्योदय के पहले उठते थे और बागमती नदी में स्नान कर छाती भर जल में खड़े रह कर दो घड़ी संध्या और जप किया करते थे। कठिन से कठिन जाड़े में भी वे इस नित्य नियम को अविच्छिन्न रूप से सदा पालन करते थे।

बालनरसिंह की दो स्त्रियाँ थीं। ज्येष्ठा से उनके केवल एक ही पुत्र था जिसका नाम बख्तवीर था और दूसरी स्त्री से, जो थापा भीमसेन के भाई नैनसिंह की पुत्री और मातबरसिंह की बहन थी जंगबहादुर, बंबहादुर, बद्रीनरसिंह, कृष्ण-बहादुर, रणोद्दीपसिंह, जगतशमशेर और धीरशमशेर सात लड़के और लक्ष्मीश्वरी और रणोद्दीपेश्वरी दो कन्याएँ थीं।

२—बालचरित्र ।

जंगवहादुर का जन्म काजी बालनरसिंह की दूसरी पत्नी के गर्भ से १८ जून सन् १८१७ को बुध के दिन हुआ। पिता ने पुत्र के जन्म पर बड़ा उत्सव मनाया और पुरोहित से उसका जातकर्म संस्कार करा कर अनेक दान पुण्य किए, सैकड़ों भूखों और ब्राह्मणों को भोजन कराया, भिक्षुकों और गरीबों को लोटे कंबल आदि बाँटे और अनेकों को कपड़े लत्ते दिए। बधावा बजा और कई दिन तक महफिल रही जिसमें वहाँ के बड़े बड़े राजकर्मचारी आमंत्रित और सम्मिलित हुए।

जन्म के छठें दिन बच्चे की छट्ठी पूजी गई और बहुत कुछ दान पुण्य किया गया। नैपाल में ज्योतिष विद्या का बड़ा महत्व है और वहाँ के लोगों की इस विद्या पर बहुत श्रद्धा और विश्वास है। ज्योतिषियों ने जंगबहादुर की कुंडली बना कर बालनरसिंह से कहा कि आप का यह पुत्र एक वीर पुरुष होगा और अपने भाग्य से राजा होगा। बालनरसिंह अपने पुत्र के भाग्य को सुन अत्यंत आनंदित हुए और उन्होंने ज्योतिषियों को पुष्कल दक्षिणा दे बिदा किया।

ग्यारहवें दिन सूतिका स्नान कराया गया और होनहार बच्चे का नाम वीरनरसिंह रक्खा गया। पर उस के कई दिन बाद एक दिन जंगबहादुर के मामा जनरल मातबरसिंह आए

और लड़के को देख कर उन्होंने उसका नाम जंगबहादुर रक्खा और उसी दिन से वह इस नाम से प्रसिद्ध हुआ। छठें महीने अन्नप्राशन संस्कार किया गया और वहाँ की रीति के अनुसार उसे अच्छे कपड़े और गहने पहना कर घोड़े पर चढ़ा कर घुमाया गया और बहुत कुछ दान पुण्य किया गया।

जब जंगबहादुर तीन वर्ष का हुआ तो उसका चूड़ाकर्म और कर्णवेध संस्कार किया गया जिसमें राजमाता महाराणी ललितत्रिपुरसुंदरी ने उसे कुंडल प्रदान किया। पाँच वर्ष की अवस्था में बालक का विद्यारंभ संस्कार हुआ और गुरु के पास विद्या पढ़ने के लिये उसे बैठाया गया। गुरु ने अक्षराभ्यास कराकर संस्कृत भाषा के प्रारंभिक ग्रंथों को उसे पढ़ाया। पर बालक जंगबहादुर का जन्म पंडित होने के लिये नहीं हुआ था, प्रकृति ने उसे वीर बनने के लिये उत्पन्न किया था और वह स्वभाव से ही खेलाड़ी था और उसका मन वीरोचित कामों में बहुत लगता था। वह बचपन ही से बड़ा ढीठ, साहसी और मनचला था। अतः वह पढ़ने लिखने की अपेक्षा खेल कूद में अधिक लगा रहता था।

बालक जंगबहादुर अपने पिता का अत्यंत प्यारा था और वह प्रायः उनके साथ दर्बार में जाया करता था। जब वह आठ वर्ष का हुआ तो एक दिन की बात है कि जब वह दर्बार से अपने घर आया तो उसने देखा कि उसके पिता का घोड़ा खिंचा हुआ एक पेड़ में बँधा है। उसने अवसर पा कर चुपके से

घोड़े को पेड़ से खोल लिया और येन केन प्रकारेण घोड़े की पीठ पर वह सवार हो गया। वह अच्छी तरह लगाम भी न पकड़ पाया था कि घोड़ा उसे ले कर बेतहाशा भागा। बालक जंगबहादुर के हाथ जब लगाम न आई तो वह उसकी गर्दन पकड़ कर चिपट गया और चारजामे पर रान जमाए बैठा रहा। घोड़ा थोड़ी दूर तक तो भागा पर अपने थान पर पलट आया और चुप चाप खड़ा हो गया। बालनरसिंह ने जब उसके इस हाल को सुना तो उसने उसकी बड़ी डाँट डपट की। इस घटना के थोड़े दिनों बाद उसी साल में एक दिन वह थापाथाली में अपने पिता के बाग में खेल रहा था कि अचानक उसकी दृष्टि एक साँप पर पड़ी जो एक मंदिर के पास पेड़ के नीचे बैठा था। बालक जंगबहादुर उस विषधर साँप को देख कर भागा नहीं वरन् उसने साहसपूर्वक उसके सिर को पकड़ लिया और उसे पकड़े हुए वह अपने पिता के पास दिखाने के लिये दौड़ा। साँप उसके हाथ में लपट गया था पर वीर बालक उसका सिर अपनी मुट्ठी में दबाए हुए अपने पिता के पास पहुँचा। पिता बालक के इस साहस को देख बहुत डरा और उसने साँप की पूँछ पकड़ छुड़ा कर उसे मार डाला। जब जंगबहादुर दस वर्ष का था तो एक दिन वह अचानक बागमती नदी में बाढ़ के समय कूद पड़ा। नदी बड़े वेग से बहती थी और वह उसके बहाव के साथ बह चला

और डूबने लगा। लोग उसके निकालने के लिये दौड़े और उन्होंने उसे डूबते डूबते निकाला।

ग्यारहवें वर्ष जंगबहादुर का यज्ञोपवीत संस्कार किया गया और इसी साल मई १८२८ में उसका विवाह एक थापा सर्दार की कन्या से हुआ। इसके बाद ही उसी साल बालनरसिंह धनकुटा के हाकिम नियत हुए और विवश हो उन्हें थापाथाली से धनकुटा जाना पड़ा। बालक जंगबहादुर भी अपने पिता के साथ धनकुटा गया। उन दिनों जंगबहादुर कसरत, डँड़, मुगदर और कुश्ती में बहुत दत्तचित्त था और दाँव पेच में वह इतना बढ़ा हुआ था कि अपने से ड्योढ़े दूने तक को वह द्वंद युद्ध में चित कर देता था। धनकुटा में उसे कसरत कुश्ती के अतिरिक्त शिकार खेलने का भी अच्छा अवसर प्राप्त हुआ। यहाँ उसे कुछ युद्ध शिक्षा भी मिली और उसने गतका, फरी और धनुष बाण चलाने का भी अभ्यास किया।

चार वर्ष बाद काजी बालनरसिंह धनकुटा से दानिलधूरा में तैनात हुए। यहाँ जंगबहादुर को शस्त्र-प्रयोग-प्रणाली का उचित शिक्षा दी गई और उसे उस समय अनुसार शांकर, बाना, जंजीर और बकशी के हाथों की ।से मिली और यहीं उसे बंदूक चलाना और निशाना लगा भी सिखाया गया।

यहीं दानिलधूरा में जंगबहादुर सेना में भरती हुआ।

उस समय उसकी अवस्था केवल सोलह वर्ष की थी पर थोड़े ही दिनों के अभ्यास में वह निशाना मारने में इतना कुशल हो गया कि चाँदमारी में उसने प्रथम श्रेणी का पुरस्कार प्राप्त किया। वह निशाना लगाने का बड़ा व्यसनी था और प्रायः ढालू स्थान में ऊपर से चक्र लुढ़का कर उस पर दहने बाएँ आगे पीछे सब ओर से गोली का निशाना लगाता था। उसका लक्ष्य इतना सच्चा और तुला हुआ होता था कि वह उड़ती चिड़िया और दौड़ते हिरन पर बेचूक निशाना लगा सकता था।

साल डेढ़ साल के बाद जंगबहादुर घुड़सवार सेना के लफ्टेनेंट बनाए गए और उसके पीछे ही सन् १८३५ के प्रारंभ में काजी बालनरसिंह की बदली दानिलधूरा से जुमला को हुई। जंगबहादुर भी अपने पिता के साथ जुमला गए और वहाँ उनके साथ रह कर उन्हें जुमला के प्रबंध में सहायता देते रहे।

अप
देख र
माग
अर
ठे

३—बुरे दिन।

नैपाल एक विलक्षण राज्य है जहाँ सदा से मंत्री सब कुछ कर्ता धर्ता रहा है। महाराज रणबहादुरशाह के समय से ही मंत्री का अधिकार प्रबल होता आया था। १८३३ के पूर्व नैपाल के मंत्रिमंडल में दो प्रधान दल थे। एक तो पांडे का, दूसरा थापा लोगों का। उस समय थापा दल प्रबल था और इस दल के मुखिया भीमसेन थापा वहाँ के प्रधान मंत्री थे। महाराज राजेंद्रविक्रम ने रानी के बहकाने में आ कर अपने बूढ़े मंत्री भीमसेन थापा को अधिकार से च्युत करने की सन् १८३३ में चेष्टा की, पर उनकी सब चेष्टा निरर्थक हुई। उस समय तो वे चुप रहे पर चार वर्ष बाद सन् १८३७ में उन्होंने अपने बूढ़े मंत्री पर अपने एक बच्चे को विष देने का मिथ्या दोष लगा कर उसे कैद कर दिया। तब उनके विरोधी कालापांडे के दल की प्रधानता हुई और चौतुरिया दल के फतेहजंगशाह को मंत्री का पद मिला। भीमसेन थापा का सब धन छीन लिया गया और उसके सब संबंधी पदों से अलग कर दिए गए। भीमसेन थापा ने यह सब कुछ सहन किया पर जब बंदीगृह में उन्हें यह धमकी दी गई कि उनकी स्त्रियों को जनसाधारण के सामने दंड दे कर उनकी हतक की

जायगी तो बूढ़े थापा ने कारागार में सन् १८३९ में आत्मघात कर प्राण दिए।

थापा भीमसेन के कैद होने पर उनका भतीजा जनरल मातबरसिंह भाग कर हिंदुस्तान में चला आया। काजी बालनरसिंह और जंगबहादुर भी थापा के संबंधी होने के कारण अपने पदों से च्युत किए गए। बालनरसिंह अपने पुत्र जंगबहादुर के साथ जुमला से काठमांडव आए।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि जंगबहादुर ने अब तक दुर्दिन का स्वप्न भी नहीं देखा था। उनका जन्म एक सम्पन्न कुल में हुआ था और उनका समय अब तक खेल कूद सैर शिकार में ही बीतता रहा। अब उन्हें निठल्ला बन घर में बैठना पड़ा। बहुधा बड़े आदमी जिन्हें कुछ काम नहीं रहता बैठे बैठे अपना समय ताश गंजीफा शतरंज आदि के खेलों में काटा करते हैं और धीरे धीरे अभ्यास पड़ते पड़ते वह उनकी लत हो जाती है। मनुष्य का स्वभाव है कि वह कुछ न कुछ किया ही करता है। जागने की अवस्था बिना काम किए भली नहीं मालूम पड़ती अतः उसे विवश हो शारीरिक वा मानसिक व्यापारों में निरत होना पड़ता है। बुद्धिमान् का काम है कि वह अपने अवयवों और मन को अच्छे व्यापारों में लगाए रहे और उन्हें पड़े पड़े बेकार न होने दे और व्यापार भी ऐसे हों जो उसे बुराइयों से बचावें।

इस अवस्था में जब जंगबहादुर को बेकार हो घर बैठना

पड़ा तो उन्हें जुए की लत लगी और वे दिन रात अपना समय काटने के लिये जब कुछ न रहता तो जुआ खेला करते थे। जुआ खेलना भारतवर्ष में नया नहीं है, अति प्राचीन काल से यहाँ के लोगों में यह दुर्व्यसन चला आता है। स्वयं वेदों में कितने ऐसे मंत्र हैं जिनमें यह प्रार्थना की गई है कि हम जुए का दाँव जीतें, हमारे सामने सब खेलनेवाले हार जाँय। पर विचारशील इस दुर्व्यसन की सदा निंदा करते आए हैं। जिन वेदों में जुए में जीतने के लिये प्रार्थना है उन्हीं में, अक्षसूक्त में, जुए की खूब निंदा की गई है और खेती की प्रशंसा और उत्कृष्टता दिखलाई गई है। पुराणों में नल-युधिष्ठिरादि की दुर्दशा इसी जुए ही के कारण हुई। पर अनादि काल से अनेक महानुभावों और विचारशीलों के निंदा करने पर भी यह पिशाच हमारे देश से न गया। द्यूत क्रीड़ा की प्रथा किसी न किसी रूप से सभी जातियों में, चाहे वे किसी देश की क्यों न हों, पाई जाती है। पाश्चात्य सभ्य जाति के लोग इसे नियमबद्ध लाटरी के नाम से खेलते हैं, गरीब लोग इसे कौड़ियों से खेलते हैं। पर चाहे जिस रूप में हो बाजी लगाना ही जुए का उद्देश्य है। यद्यपि हिंदुस्तान में नियमित रूप से सदा जुआ नहीं खेला जाता और साल भर में केवल कार्त्तिक की अमावास्या के लगभग दिवाली में ही लोग उसे खेलते हैं पर इन्हीं दो ढाई दिनों में सैकड़ों का बनना बिगड़ना हो जाता है।

कहते हैं कि एक दिन जंगबहादुर जुए में ११००) रुपया हार गए। उनके पास एक पैसा भी न रह गया कि वे उस ऋण को चुकाते। इनके पिता की भी आर्थिक अवस्था उस समय अच्छी न थी। उन्होंने इसी बेकारी के समय बागमती पर एक पुल बनवाना प्रारंभ किया था जिसमें उन की सारी कमाई लग गई थी। इसके अतिरिक्त उनका कुटुंब भी बड़ा था। जंगबहादुर इस रुपए के लिये पिता से भी नहीं कह सकते थे और कहने पर उन्हें मिलने की आशा भी न थी। थापाथाली में उन्हें एक पैसा नहीं मिल सकता था क्योंकि स्वयं उनके पितृव्य ने, उनके पिता को एक बार, बागमती का पुल तैयार करने के लिये अपने चचेरे भाई वीरभद्र से १५०००) कर्ज माँगने पर टका सा यह कह कर जवाब दे दिया था कि आप के पास आठ पुत्रों के सिवाय और है ही क्या जिस के बिर्ते पर मैं १५०००) आप को दूँ।

निदान रुपए के तगादे से तंग आ कर वे थापाथाली से ललितापट्टन आए और वहाँ एक भैंस के व्यापारी धनसुंदर से उन्होंने ११००) कर्ज माँगे। धनसुंदर ने तुरंत उन्हें रुपए निकाल कर दे दिए। वे रुपयों को अपनी पीठ पर लाद कर थापाथाली आए और उन्होंने अपना ऋण चुकाया। इस बार तो काम चल गया पर उनकी आर्थिक अवस्था दिनों दिन हीन होती गई और उन पर ऋण का भार बढ़ता गया और अंत को वे थापाथाली से भाग कर तराई में इस विचार से आए कि दो एक

जंगली हाथी फँसा कर उन्हें बेच किसी तरह अपने ऋण को चुकावें। इस प्रकार आकाश-कुसुम की आशा में वे अकेले तराई में एक छोर से दूसरी छोर तक हाथी फँसाने की आशा में फिरते रहे। अकेले असहाय जंगली हाथियों का पकड़ना शेखचिल्ली के ख्याल से कुछ कम न था, जिसे अंत को उन्हें कृतकार्य्य होने की आशा न देख छोड़ना ही पड़ा।

हाथी पकड़ने की आशा को छोड़ वे तराई से काशी आए। काशी साधुओं और संन्यासियों का घर है, यह भारत के सभी प्रांतों में प्रसिद्ध है। साधारण हिंदुओं से ले कर बड़े बड़े पंडितों तक का यह विश्वास है कि साधुओं में कितने साधु रसायन वा कीमिया जानते हैं और वे इस प्रयोग से ताँबे का सोना बनाते हैं। इस प्रकार की झूठी कथाएँ नैपाल की तराई में बहुधा सुनी जाती हैं कि अमुक साधु ने एक चुटकी राख वा एक जड़ी की पंत्तियाँ निचोड़ कर ताँबे का सोना बना दिया और कितने ही लोग इन गप्पों की साक्षी भी देने को मिल जाते हैं। इस प्रकार की कथाओं से उत्तेजित हो कितने ही लोग साधुओं के पीछे अपना सर्वस्व खो डालते हैं। ऐसे लोग लाख समझाने पर भी अपने इस भ्रम को त्याग नहीं सकते। उनका दृढ़ विश्वास है कि जंगलों में ऐसी बूटियाँ और पहाड़ों में ऐसे पत्थर हैं जिनके संयोग से ताँबा वा लोहा सोना हो सकता है और ऐसी जड़ी बूटी और पत्थर सिवाय साधुओं के दूसरे लोग नहीं जानते। वे जिन पर कृपा करें उसे दे सकते हैं।

जंगबहादुर भी इसी विचार से काठमांडव से काशी में आए थे कि काशी में साधु संन्यासी बहुत रहते हैं, उनकी सेवा सुश्रूषा से यदि उन्हें पारस पत्थर वा रसायन बूटी हाथ लग जाय तो वे सोना बना उसे बेच कर अपना ऋण चुकावें और शेष जीवन आराम से काटें। पर उन्हें वहाँ महीनों रहने और साधुओं के पास इधर से उधर मारे मारे फिरने पर भी कुछ हाथ न लगा और जब वे अत्यंत निराश हो गए तो फिर उन्हें विवश हो जनवरी सन् १८३६ में काशी से नैपाल जाना पड़ा।

कई महीने तराई और हिंदुस्तान में इधर उधर मारे मारे फिरने से जंगबहादुर को द्रव्य तो न मिला पर संसार का कुछ अनुभव हो गया और वे स्वात्मावलंबन सीख गए।

नैपाल पहुँचने पर एक मास के भीतर उनकी प्यारी सहधर्मिणी का देहांत हो गया। यह उन पर अंतिम विपत्ति थी, मानों उनकी प्यारी उन की सारी विपत्ति अपने सिर पर ले उन्हें अपने वियोग का अंतिम दुःख दे स्वर्गलोक सिधारी।

४—अच्छे दिन।

प्रथम स्त्री के मर जाने पर जंगबहादुर का दूसरा विवाह सनकसिंह की बहिन से हुआ। विवाह में सनकसिंह ने अनेक दायज और धन दिया जिससे जंगबहादुर ने अपना सारा ऋण चुका दिया और वे आनंद से रहने लगे।

नैपाल देश की तराई में यद्यपि अब भी बहुत जंगल हैं पर उस समय यहाँ उतनी आबादी न थी और चारों ओर जंगल ही जंगल थे। इन जंगलों में जंगली हाथी झुंड के झुंड रहते थे। नैपाल सर्कार की ओर से प्रति वर्ष इनमें जंगली हाथियों के फँसाने का प्रबंध होता था और सैकड़ों हाथी फँसाए जाते थे। हाथियों के फँसाने में बड़े बड़े दँतैले मत्त हाथियों से काम लिया जाता है जिन्हें शिकारी हाथी कहते हैं। इन हाथियों के साथ शिकारियों का एक दल रहता है जो हाथियों को फँसाता है। हाथी झुंडों में रहते हैं जिनमें एक नायक हाथी होता है। यह हाथी प्रायः सब से दृढ़ और बलिष्ठ होता है जिसके साथ अनेक हथिनियाँ और बच्चे रहते हैं। हाथियों का पकड़ना सहज काम नहीं है। सब से कठिन काम नायक हाथी को थकाना है। इसके बिना हाथियों का पकड़ना नितांत दुस्तर है। इस काम के लिये शिकारी हाथियों को नायक हाथी से युद्ध करना पड़ता है और उसे

मार कर परास्त करना पड़ता है। जब वह श्रांत और शिथिल हो जाता है तो उसे शिकारी लोग मौका पा कर बाँधते हैं। हाथियों की टोह शिकारी लोग लिया करते हैं, ज्योंहीं उनको पता मिलता है कि अमुक स्थान में हाथियों का झुंड है वे तुरंत शिकारी हाथियों को ले कर उन पर धावा करके उनका पीछा करते हैं। पहिले तो जंगली हाथी भागते हैं, पर जब उन्हें भाग कर बचने की आशा नहीं दिखाई पड़ती तो वे पलट कर नायक को आगे कर उनका सामना करते हैं। फिर शिकारी हाथियों की सहायता और अपनी कुशलता से शिकारी लोग उन्हें थका कर जिन्हें जिन्हें घात मिलती है पकड़ लेते हैं। इस प्रकार हाथी के फँसाने को खेदा कहते हैं। ऐसा खेदा नैपाल की तराई में प्रति वर्ष अब तक हुआ करता है। खेदा प्रायः जाड़े के अंत में प्रारंभ होता है जिसमें नैपाल के बड़े बड़े कर्मचारी और स्वयं महाराजाधिराज भी सम्मिलित हुआ करते हैं।

सन् १८४० में खेदा के समय जब महाराज राजेंद्रविक्रम काठमांडव से तराई में खेदा के लिये उतरे तो जंगबहादुर भी उनके साथ शिकारियों के दल में आए और इसी खेदा में उनके अमानुषी साहस से महाराज राजेंद्रविक्रम की दृष्टि उनकी ओर आकृष्ट हुई थी। खेदा के समय एक बार खेदा-वालों ने एक नायक दँतैले हाथी को घेर लिया था। दँतैला बिगड़ा हुआ था और किसी शिकारी को यह साहस नहीं

होता था कि उसे फँसा सके। ऐसी अवस्था में वीर जंग-बहादुर हाथ में रस्सा लिए हुए शिकारियों के झुंड से निर्भय आगे बढ़े और अपनी जान पर खेल कर उन्होंने बिगड़े जंगली दँतैले की पिछली टाँग फँसा कर बाँध दी। उनका यह साहस देख महाराज राजेंद्रविक्रमशाह बहुत प्रसन्न हुए और बहुत कुछ पुरस्कार देने के अतिरिक्त उन्होंने उन्हें तोप-खाने के कप्तान का पद प्रदान किया।

खेदा से पलट कर जंगबहादुर महाराज राजेंद्रविक्रम के साथ वसंतपुर गए। वसंतपुर नैपाल का एक छोटा सा नगर है। यहाँ महाराज का राजभवन बना हुआ है। यहाँ पहुँचने पर राजमहल में एक दिन भैंसों की लड़ाई कराई गई। नैपाल में भैंसे लड़ाने का बहुत प्रचार है। वहाँ बड़े बड़े आंगनों में उन्मत्त भैंसे लड़ाए जाते हैं। इस लड़ाई के देखने के लिये सहस्त्रों मनुष्यों की भीड़ होती है और बड़े बड़े आदमी इस युद्ध के देखने के लिये आते हैं। इस युद्ध के अंत में एक भैंसा लड़ाई में हार कर भागा और राजकीय अश्वशाला की एक कोठरी में घुस गया। वहाँ से भैंसे के निकालने के लिये लोगों ने अनेक प्रयत्न किए पर सब के सब निरर्थक हुए। जो उस भैंसे को निकालने के लिये वहाँ जाता था भैंसा उसे हुरपेटता हुआ उस पर पागल की तरह टूटता था। सब लोग अनेक अनेक यत्न कर के हार गए पर भैंसा वहाँ से न निकला। इसी बीच में जंगबहादुर चुपके से

एक हाथ में रस्सी और दूसरे में कंबल लिए उस कोठरी में घुस गए और उन्होंने चालाकी से फुर्ती के साथ भैंसे के मुँह पर कंबल डाल उसकी आँखों पर पट्टी लगा दी और उसकी पूँछ ऐंठ सेउ अस्तबल से बाहर ढकेल कर निकाल दिया। जंगबहादुर के इस साहस और सूझ को देख सब लोगों ने उनकी प्रशंसा की और स्वयं महाराजाधिराज ने अपने मुख से यह कहा कि जंगबहादुर सचमुच हम सब में बहादुर है।

इस घटना को चार पाँच महीने भी न होने पाए थे कि पहली अगस्त को काठमांडव में एक बनिए के घर में आग लगी। आग तेजी से फैली और लोगों से जहाँ तक हो सका उन्होंने माल असबाव निकाला और घर की स्त्रियों और बच्चों को चटपट बाहर किया। पर इस हड़बड़ी में एक स्त्री और एक पाँच छः वर्ष की लड़की घर ही में रह गई और आग चारों ओर फैल कर हहर हहर जलने लगी। घर के संगहे जल जल कर टूटते थे और बड़े बड़े अंगारे टूट टूट कर मैदान में गिरते थे। सब लोग घबड़ाए हुए खड़े थे और उन बेचारियों की अवस्था पर शोक प्रकाशित कर रहे थे पर किसी को उनके बचाने का न तो कोई यत्न ही सूझता था और न किसी को साहस ही होता था। इसी बीच में वीर जंगबहादुर हल्ला गुल्ला सुन कर वहाँ पहुँचे और उन लोगों की घबड़ाहट देख उन्होंने उसका कारण पूछा तो उन्हें मालूम हुआ कि एक स्त्री और एक लड़की घर में रह गई है जिनके निकालने का कोई ढंग नहीं दिखाई पड़ता

जंगबहादुर से उनकी दशा सुन कर रहा न गया और वे विवश होकर दौड़े और एक खिड़की के द्वार से, जहाँ तक आग नहीं पहुँची थी पर उसके भीतर धुएँ से अँधेरा हो रहा था, घुस गए। उनके इस साहस को देख सब लोग अत्यंत विस्मित हुए और घबड़ा गए, पर थोड़ी देर में जंगबहादुर छोटी लड़की को अपनी गोद में लिए और स्त्री को हाथ से पकड़े हुए उसी खिड़की के तंग द्वार से धुएँ में से होकर निकले तो उन्हें देख सब लोग आनंद में मग्न हो गए। सब लोगों ने उनके इस साहस और वीरता की प्रशंसा की और स्त्री और लड़की तथा उनके कुटुंबियों ने उन दोनों के प्राण बचाने के लिये जंगबहादुर को धन्यवाद दिया। इस निःस्वार्थ श्रम से जंगबहादुर को ज्वर आ गया और वे बीमार पड़ गए।

ज्वर से अच्छे होने पर एक दिन वर्षा काल में जंगबहादुर मनोहरा नदी के किनारे अपने मित्रों के साथ टहल रहे थे। नदी चढ़ी हुई थी और बड़े वेग से बहती थी कि अचानक उनकी दृष्टि दो स्त्रियों पर पड़ी जो नदी की बाढ़ में बहती जा रही थीं और समीप था कि वे डूब जाँय। जंगबहादुर से कब हो सकता था कि वे देखते और चुप रह जाते, वे फ़ौरन बढ़ी हुई नदी में कूद पड़े और पैर कर उन दोनों स्त्रियों के बाल पकड़ कर उन्हें निकाल लाए।

जंगबहादुर अमानुषी साहस और बल ले कर संसार में जन्मे थे, उन्होंने अपने जीवन भर में कितने ही अमानुषी कृत्य

किए जिन्हें सुन कर लोग अब तक दाँतों के नीचे अँगुली दबाते हैं और कितने तो उन्हें असंभव और गप्प समझते हैं। चीते को जीते पकड़ना और उसे तलवार से मारना तो उनके लिये बाएँ हाथ का खेल था।

उसी साल सितंबर के महीने में काठमांडव में एक नेवार के घर में एक चीता घुस गया। आस पास के लोग घर को चारों ओर से घेरे हल्ला गुल्ला मचा रहे थे पर किसी की यह हिम्मत नहीं पड़ती थी कि घर में घुस कर चीते को निकाले वा दरवाजे के सामने जावे। जंगबहादुर हल्ला गुल्ला सुन कर उस नेवार के घर पर पहुँचे और जब उन्हें यह मालूम हुआ कि घर में एक चीता घुसा पड़ा है तो उन्होंने पास के एक आदमी के हाथ से जो बाँस की टोकरी (बोका) लिए खड़ा था टोकरी छीन ली और वे निधड़क घर में घुस गए। उन्होंने फुर्ती से चीते के सामने पहुँच कर चीते के मुँह को बोके में छोप लिया और उसे दबोच कर "दौड़ो चीता पकड़ लिया" का शोर मचाया। उनके शब्द को सुन कर अन्य लोग घर में घुस गए और उनके चीते के पकड़ने में सहायक हुए। चीता जीता पकड़ लिया गया जिसे जंगबहादुर ने युवराज सुरेंद्रविक्रम को भेंट किया।

नवंबर के महीने में महाराज राजेंद्रविक्रम के पास खबर पहुँची कि दहचोक की पहाड़ी पर एक चीता बड़ा उपद्रव मचा रहा है। महाराज राजेंद्रविक्रम दो चार शिकारियों और

जंगबहादुर को साथ ले चीते को मारने के लिये स्वयं दहचोक पहुँचे। शिकारियों ने पहले चीते की टोह ली और हँकवा प्रारंभ किया। चीता शोर सुनते ही एक झाड़ी से निकला और निकलते ही एक शिकारी पर विजली की तरह टूट कर उसे ले पड़ा। जंगवहादुर इस घटनास्थल से थोड़ी दूर पर खड़े यह सब देख रहे थे। वे अपनी तलवार ले कर चीते की ओर झपटे और उन्होंने उस पर एक वार चलाया। वार हलका गया और चीता शिकारी को छोड़ जंगबहादुर की ओर टूटा। उसका टूटना था कि जंगबहादुर ने उस पर अपना वह तुला हुआ हाथ मारा कि चीता एकदम दो टूक हो गया। महाराज थोड़ी दूर पर खड़े यह सब देख रहे थे। जंगबहादुर के हाथ की सफाई देख वे 'वाह वाह शाबाश शाबाश' कहने लगे।

इस घटना को हुए तीन दिन भी न हुए थे कि वीर जंग-बहादुर ने एक और बहादुरी और साहस का काम किया। काठमांडव में महाराज की हाथीशाला के एक सब से प्रचंड और मदोन्मत्त हाथी को एक दिन उसका महावत बागमती नदी के किनारे नहला रहा था कि हाथी अचानक बिगड़ा और उसने महावत को पटक कर वहीं उसका काम तमाम कर दिया। हाथी वहाँ से राजमहल की ओर दौड़ा गया और रास्ते में जो कोई मिला उसने उसे पटक डाला, कितनी चीजों को तोड़ फोड़ डाला। उसकी यह अवस्था देख सब लोग इधर उधर भागने लगे। महाराज की

हाथीशाला में इस हाथी से प्रबल और प्रचंड कोई दूसरा हाथी नहीं था कि वह इसे पकड़ सकता। सब लोग बड़ी चिंता में पड़े हुए थे और किसी की हिम्मत नहीं पड़ती थी कि वह उसे पकड़ सके। जंगबहादुर ने सब की यह अवस्था देख महाराज की सेवा में निवेदन किया कि यदि श्रीमान् आज्ञा दें तो मैं इस बिगड़ैल हाथी को पकड़ ला दूँ। महाराज उनकी इस बात को सुन अत्यंत विस्मित हुए और बोले "क्या तेरी मौत आई है जो इसके पकड़ने की आज्ञा माँग रहा है?" पहले उन्होंने आज्ञा देने से इनकार किया, पर जंगबहादुर के बार बार हठ करने पर महाराज ने उन्हें आज्ञा दे दी। जंगबहादुर काठमांडव से थापाथाली गए और बागमती नदी के किनारे सिंहस्थल की बाजार में एक ऐसे मकान के ऊपर चढ़ कर अंकुश और कुकड़ी लेकर बैठे जहाँ से उस उन्मत्त हाथी के जाने की अधिक संभावना थी। दैव योग से हाथी उसी मार्ग से हो कर निकला और ज्योंही वह उस मकान के नीचे पहुँचा जंगबहादुर ऊपर से ऐसा ताक कर उसके ऊपर कूदे कि ठीक उसके कंधे पर गिरे और गिरते ही उस पर आसन जमा कर बैठ गए। हाथी ने उन्हें गिराने के लिये बहुत अपना शरीर हिलाया पर जंगबहादुर ऐसा आसन जमा कर बैठे थे कि उसका सारा प्रयत्न निरर्थक हुआ। जंगबहादुर ने उसकी दुष्टता देख उस पर अंकुश और कुकड़ी के ऐसे प्रहार करने आरंभ किए कि हाथी

उनके गिराने में असमर्थ हो पाटन की ओर भागा। रास्ते में आगे एक पुल पड़ता था जो अत्यंत जीर्ण और शीर्ण था और इसकी अधिक संभावना थी कि यदि हाथी पुल पर से जायगा तो वह पुल अवश्य टूट कर हाथी को लिए हुए नीचे गिर पड़ेगा। बड़ी कठिन समस्या थी, जंगबहादुर की जान दोनों तरह जोखम में थी। यदि वे कूदते तो हाथी उन्हें कब छोड़नेवाला था और यदि वे उस पर बैठे रहते तो पुल पर से गिर कर वह हाथी के साथ चकना चूर हो जाते। निदान उन्होंने विवश हो हाथी पर दोनों हाथों से अंकुश और कुकड़ी से प्रहार करना तथा चिल्लाना प्रारंभ किया। हाथी भयभीत हो उधर से पलटा और त्रिपुरेश्वरी की ओर दौड़ा। यहाँ पर उसके फँसाने के लिये फंदा रचा गया था। हाथी फंदे में पड़ गया और लोगों ने उसी दम उसे फँसा कर रस्सियों में जकड़बंद बाँध लिया। जंगबहादुर की इस जीवट को देख महाराज बहुत प्रसन्न हुए और उनकी प्रशंसा करते हुए कहने लगे कि जंगबहादुर के कलेजा नहीं है* और यह नहीं कहा जा सकता कि वह अपनी मौत मरेगा।

---

* नैपाली लोगों में अत्यंत साहसी पुरुष को जो निडर हो बिना कलेजे का कहते हैं। उनका विश्वास है कि मनुष्य में कलेजे से भय होता है।

५—युवराज कुमार सुरेंद्रविक्रम।

सन् १८४० के अंत में जंगबहादुर युवराज सुरेंद्रविक्रम के साथ नियत किए गए। युवराज सुरेंद्रविक्रम अत्यंत उजड्ड, भीरु और क्रूर स्वभाव का राजकुमार था। यद्यपि वह स्वयं बंदूक को छतियाने से भय खाता था पर दूसरे को कठिन से कठिन, जोखम से जोखम के काम में नियुक्त करने में तनिक भी संकोच नहीं करता था। इस क्रूर राजकुमार के साथ रह कर जंगबहादुर को बड़े बड़े अमानुषी कृत्य करने पड़े थे, जिन्हें सुन कर लोगों को अचंभा होता है।

फरवरी सन् १८४१ में राजकुमार बीमार पड़ा और उस का स्वास्थ्य बिगड़ गया। बड़े बड़े वैद्यों ने उसे स्थान-परिवर्तन की सम्मति दी और राजकुमार काठमांडव से त्रिशूली गंगा के किनारे स्थान-परिवर्तन के लिये भेजा गया। एक दिन राजकुमार त्रिशूली गंगा के पुल पर टहल रहा था कि अचानक उसकी आँख दूर से एक लफ्टेंट पर पड़ी जो अपने घोड़े पर चढ़ा चला आ रहा था। इस लफ्टेंट का नाम रणवीर था और बहुत दूर होने के कारण उसने युवराज को देखा नहीं और इसी लिये वह अपने घोड़े से उतर न सका। राजकुमार उसके इस अज्ञात कृत्य से बहुत क्रुद्ध हुआ और उसने उसको अपने पास पकड़वा मँगाया। राजकुमार की अव्यवस्थित चित्तता और

क्रूरता से सब लोग परिचित थे। रणवीर का प्राण सूख गया और वह डरता काँपता युवराज के सामने आया। युवराज ने उसे देखते ही आज्ञा दी कि इसे घोड़े समेत पुल पर से गिरा दो। आज्ञा होनी थी कि लोग उसे पुल पर से गिराने को सन्नद्ध हो गए। विचारा रणवीर करता तो क्या करता, उसका बचना अत्यंत कठिन था, निदान उसने कुमार से प्रार्थना की कि मुझे पुल पर से कूदने के पहले अपने परिवार से मिलने और उन्हें देख आने की आज्ञा दी जावे। पर राजकुमार ने कहा—"रणवीर, तुम डरो मत, तुम पुल पर से कूदने से मरोगे नहीं।" कुमार के इस क्रूर उत्तर को सुन रणवीर ने कहा—"महाराज, सिवाय जंगबहादुर के नैपाल में दूसरा पुरुष ऐसा नहीं उत्पन्न हुआ है जो इस पुल से कूद कर जीता बच सके।" रणवीर का यह कहना था कि अव्यवस्थित युवराज का ध्यान जंगबहादुर की ओर गया। उसने रणवीर को तो छोड़ दिया और जंगबहादुर को बुलाने की आज्ञा दी। जंगबहादुर राजकुमार की आज्ञा पाते ही आए। राजकुमार ने उन्हें देखते ही आज्ञा दी—" जंगबहादुर, आज तुम घोड़े पर सवार होकर पुल पर से त्रिशूली गंगा में कूदो।"

त्रिशूली गंगा एक पहाड़ी नदी है और बड़े वेग से बहती है। इसके करारे इतने ऊँचे हैं कि ऊपर से देख कर पित्ता पानी होता है। ऐसी भयानक और वेगवती नदी में जिसमें सीधे पैरना कठिन है पचास साठ हाथ ऊँचे पुल से अकेले नहीं

घोड़े पर सवार होकर कूदना न केवल जान को जोखम में डालना है बल्कि जान बूझ कर मौत के मुँह में प्रवेश करना है। पर वीर जंगबहादुर उस पुल पर से कूदने पर सन्नद्ध हो गए और उन्होंने कुमार से कहा कि "मैं इस पुल पर से आपकी आज्ञा के अनुसार इस शर्त पर कूदूँगा कि आप आज से प्रतिज्ञा करें कि आप फिर कभी मुझे ऐसे क्रूर काम करने के लिये आज्ञा न देंगे।" पर वहाँ सुनता कौन था, बड़ी कहा सुनी पर कुमार ने शपथ की कि "अच्छा मैं तुम्हें छः महीने ऐसा दुःसाध्य भयानक कृत्य करने की आज्ञा न दूँगा और यदि दूँ तो अपने पिता का हड्डी मांस चबाऊँ।" अस्तु जंगबहादुर घोड़े पर सवार हुए और पुल पर से कूद कर अपने प्राण देने के लिये उतारू हो गए। वे अपने घोड़े पर चढ़े हुए वेगवती त्रिशूली गंगा के भयानक वक्षस्थल पर जिसमें तिनका छोड़ने से खंड खंड होता था कूदे! पर कूदते समय उन्होंने अपने पैर रकाब से अलग रक्खे और बीच में ही वे घोड़े की पीठ से उछल कर अलग नदी में गिरे। उनके गिरते ही सब लोगों ने हाहाकार मचाई। देखते देखते सवार और घोड़ा दोनों नदी की तीव्र धारा में विलीन हो गए और सबों ने सदा के लिये वीर जंगबहादुर को फिर जीवित देखने की आशा परित्याग कर दी। इस रोमांचकारी घटना को देख स्वयं क्रूर-हृदय राजकुमार को भी अपनी आज्ञा पर पश्चात्ताप हुआ और उसने तुरंत अनेक मल्लाहों को वीर जंगबहादुर को बचाने के लिये आज्ञा दी।

पर ऐसी भयानक नदी में कूदने का किसका साहस पड़ सकता था। लोग उसे खोजने के लिये चारों ओर दौड़े और बहुत खोज करने पर वे वहाँ से एक मील पर नदी के बीच एक चट्टान पर मिले जहाँ वे बैठे अपने कपड़े सुखा रहे थे। लोगों ने उन्हें देख कर बड़ी प्रसन्नता और हर्ष प्रकट किया और वे उन्हें लेकर राजकुमार के पास आए। युवराज उन्हें देख हर्ष के मारे उछल पड़ा और उनको पीठ ठोकने लगा।

इस घटना को हुए अधिक दिन न हुए थे कि एक दिन राजकुमार अपने इष्ट मित्रों और मुसाहिबों के साथ सैर करने के लिये निकला। दैवयोग से उस समय उसके साथ जंगबहादुर भी थे। राजकुमार टहलता हुआ भीम की निगाली के पास पहुँचा और अचानक उसे उस धौराहर पर चढ़ा कर किसी को कुदाने की सनक सवार हुई। उसने जंगबहादुर की ओर देखा और उन्हें आज्ञा दी कि आज तुम इस धौराहर पर चढ़ कर कूदो। भीम की निगाली एक ऊँचा धौराहर है जिसके भीतर चक्करदार सीढ़ियाँ बनी हुई हैं, इसकी उँचाई २५० फुट है और इसके चारों ओर पत्थर का फर्श बना हुआ है। इस पर से कूदने में जंगबहादुर का प्राण बचना क्या उनकी हड्डी पसलियों तक का पता लगना असंभव था। इस धौरहरे की कुंजी उस समय जंगबहादुर के छोटे भाई बंबहादुर के पास थी। जंगबहादुर ने राजकुमार की आज्ञा पाते ही चुपके से बंबहादुर को आँख से इशारा किया कि वह कुंजी को छिपा दे

और माँगने पर यह कह दे कि उसकी कुंजी नहीं मिलती है। फिर वह युवराज से बोले कि "मैं आज आप की आज्ञा पालन करने में कई कारणों से असमर्थ हूँ। पहिले तो इस पर से कूदने के लिये मुझे दो पराशूट* की आवश्यकता पड़ेगी और पंद्रह बीस दिन से कम में ऐसे पराशूटों का तैयार होना असंभव है और यदि मैं बिना पराशूट के कूदने का साहस भी करूँ तो यह निश्चित है कि पत्थर की गच पर गिरने से मेरी हड्डियाँ चकनाचूर हो जाँयगी और मैं सदा के लिये आप की आज्ञा पालन करने से वंचित हो जाऊँगा। फिर भी यदि ऐसा करने के लिये श्रीमान् आग्रह करें और मैं प्राण देने के लिये उतारू भी हो जाऊँ तो धौराहर की कुंजी नहीं मिलती जिससे सारा परिश्रम व्यर्थ है। उत्तम तो यह है कि श्रीमान् मुझे पंद्रह बीस दिन की छुट्टी देवें कि इस बीच में मैं पराशूट बनवा लूँ, फिर आप सब लोगों को इकट्ठे कीजिए और मैं इस धौराहर से कूद कर आप को तथा अन्य दर्शकों को आनंदित करूँ।" राजकुमार ने जंगबहादुर की बात उस समय मान ली और उस वीर पुरुष का प्राण बच गया।

अप्रैल में युवराज काठमांडव आया। यहाँ एक बहुत गहरा कुआँ है जिसे लोग बारह वर्ष का कुआँ कहा करते हैं।

* यह एक प्रकार का छाता होता है जिसे लेकर कूदने से वह खुल जाता है और उसमें हवा भर जाती है जिससे आदमी एक दम जमीन पर नहीं आ पड़ता।

दशहरे में राजमहल में नवदुर्गा की पूजा में जो भैंसे काटे जाते हैं उनकी हड्डियाँ इसी कुएँ में फेंकी जाती हैं। एक दिन युवराज ने कुतूहलवश जंगबहादुर को इस कुएँ में कूदने की आज्ञा दी। जंगबहादुर ने कहा कि इस कुएँ में हड्डियाँ हैं, पर वहाँ कौन सुनता था 'राजहठ, त्रियाहठ, बालहठ' प्रख्यात हैं। युवराज हठ करने लगा और जंगबहादुर से कुएँ में कुदाने पर दुराग्रह करने लगा। बड़ी कहा सुनी पर युवराज ने जंगबहादुर को एक दिन की मुहलत दी। जब यह समाचार जंगबहादुर के पिता काजी बालनरसिंह को मालूम हुआ तो उन्होंने रात ही रात पचीस तीस गाँठ रुई खरिदवा कर उस कुएँ में चुपके से डलवा दी। सवेरा होना था कि जंगबहादुर को फिर युवराज ने बुलाया और उस कुएँ में कूदने के लिये हठपूर्वक कहा। निदान जंगबहादुर को कुएँ में कूदना पड़ा। इस भयानक कुएँ में कूदने से जंगबहादुर के प्राण तो बच गए पर उनके दहने पैर की टेहुनी में एक हड्डी के लग जाने से गहरा घाव लगा। यद्यपि उनका यह घाव शीघ्र आराम हो गया पर जब तक वे जीते रहे यह चोट हर साल उभड़ती और उन्हें एक महीना दुःख देती रही।

इस क्रूर युवराज के संग में रह कर जंगबहादुर नित्य उस निर्दयी के आमोद प्रमोद के लिये अपनी जान जोखम में डाल कर एक न एक अद्भुत अमानुषी कर्म करते रहे जिससे न केवल वही किंतु उनके सारे कुटुंब के लोग बड़े दुखी रहे।

यह युवराज इतना मनचढ़ा था कि उसके अत्याचार से सारा नैपाल दुखी हो रहा था। बड़ी कठिनाई से नवबंर सन् १८४१ में जंगबहादुर युवराज की सेवा से हटाए गए और महाराज राजेंद्रविक्रम के शरीर-रक्षक नियत हुए।

दिसबंर महीने की २४ तारीख को उनके पिता बालनरसिंह का देहांत हो गया और अब जंगबहादुर पर उनके सारे कुटुंब के भरण पोषण का भार पड़ा। दो महीने महाराज के शरीर-रक्षक रहने के बाद जंगबहादुर कुमारीचौक के काजी नियत हुए।

६—युवराज का अत्याचार और अधिकार-परिवर्तन।

जिन लोगों ने पौराणिक राजा वेणु के अत्याचारों को पुराणों में पढ़ा है वा पारस जुहाक के अत्याचारों का वर्णन शाहनामे में देखा है अथवा नवाब सिराजुद्दौला के अत्याचारों का हाल सुना है उन लोगों को मालूम होगा कि अन्यायी राजा के वश में पड़ कर प्रजा को कितना कष्ट पहुँचता है। महाराज राजेंद्रविक्रमशाह अत्यंत दुर्वल प्रकृति के भीरु पुरुष थे और युवराज सुरेंद्रविक्रम एक क्रूर, पाषाण-हृदय, भीरु और अत्याचारी नवयुवक था। महाराज राजेंद्रविक्रम की बड़ी रानी अत्यंत बुद्धिमती और प्रबंध-कुशला थीं और इनकी योग्यता से ही नैपाल का राज्य-प्रबंध अब तक ठीक तौर से चलता रहा था। इनके जीवन काल में सुरेंद्रविक्रम भी, यद्यपि वह अत्यंत क्रूर और अत्याचारी था खुल कर प्रजा पर अत्याचार नहीं कर सकता था और उसका अत्याचार केवल उन्हीं राजकर्म्मचारियों तक रह जाता था जो अभाग्य वश उसकी सेवा में नियुक्त होते थे। अत्यंत क्रूर-हृदया छोटी रानी भी उससे भय खाती थी और वह भी खुल कर अपनी नीच प्रकृति का परिचय नहीं दे सकती थी।

अक्तूबर सन् १८४१ में इस बुद्धिमती बड़ी रानी का देहांत हो गया। उसका मरना क्या था नैपाल राज्य में अराजकता का बीज पड़ना था। राज-परिवार में प्रत्येक व्यक्ति अपने अपने मन का हो गया और चुपके चुपके अपने अधिकार बढ़ाने का यत्न करने लगा। युवराज सुरेंद्रविक्रम अब अत्यंत निरंकुश हो गया और खुले साँट लोगों पर अत्याचार करने लगा। वह राज्य के बड़े बड़े आदरणीय कर्मचारियों को दुःख देने लगा। हाथियों से रौंदवाना, पत्थरों के नीचे दबवाना, पानी में डुबाना इत्यादि ऐसे कर्म थे जिसे देख उसे आनंद मिलता था। नहाते हुए लोगों के कपड़ों को वह नदी के किनारे से उठवा कर फुँकवा देता था और बेचारे नहानेवाले माघ पूस के कड़ाके के जाड़े में दाँत कटकटाते अपने घर भीगा कपड़ा पहने रोते कलपते जाते थे। युवराज उनकी यह अवस्था देख ऊपर से ठट्ठा मारता हुआ चूतड़ पीटता था। वह जिससे क्रुद्ध होता था उसे हाथी के पाँव में रस्से से बँधवा कर सड़कों पर घसिटवाता था, राज-कर्मचारियों के हाथ में हथकड़ी डलवा कर उनके मुँह में कारिख लगवा कर नगर में घुमाता था। कहाँ तक कहा जाय स्वयं अपनी स्त्रियों तक को वह पालकी में चढ़ा बढ़ी हुई बाघमती में फेंकवा देता था और स्वयं किनारे खड़ा उनके डूबने का तमाशा देखा करता था। इतना ही नहीं वह बेचारियों को शांतिपूर्वक डूबने भी नहीं देता था और जब डूबते समय उनका दम घुटने लगता

था और उनके मुँह और नाकों में पानी भर जाता था तो उन्हें निकलवा कर थोड़ी देर के बाद फिर पानी में डुबवाता था। इस प्रकार के अनेक अत्याचार वह नित्य नए नए किया करता था।

महाराज राजेंद्रविक्रम को भय था कि ऐसा न हो कि मेरी छोटी रानी प्रबल हो जावे और वह मेरे अधिकार को छीन कर स्वयं राज्य की कर्त्री धर्त्री बन बैठे और इसी लिये वे युवराज सुरेंद्रविक्रम पर कोई दबाव नहीं डालते थे बल्कि जान बूझ कर वे उसे बढ़ावा और उत्साह दिलाते थे जिससे युवराज का अत्याचार दिन दूना और रात चौगुना बढ़ता जाता था।

दैवयोग से जंगबहादुर उसके पास नहीं रह गए थे और जैसा ऊपर लिखा जा चुका है वे कुमारीचौक के काजी नियत हो कर बाहर भेजे जा चुके थे। नैपाल में वे ही एक बज्रांग पुरुष थे जो कुछ दिनों तक सहिष्णुतापूर्वक उसके अत्याचारों को बिना जीभ हिलाए सहते रहे। युवराज का क्रूर स्वभाव इतना प्रबल हो गया था कि वह किसी के सताने के लिये अपराध निरपराध, उचित अनुचित, मित्र शत्रु का कुछ विचार नहीं करता था। नैपाल के सब लोग उसके अत्याचार से तंग आ गए थे और अंत को साल भर अत्याचारों को सहन कर वहाँ के बड़े बड़े सर्दारों ने उसकी रोक करने का दृढ़ संकल्प किया। ६ दिसंबर सन् १८४२ को काठमांडव में नैपाल के

महामात्य फतेहजंगशाह और उनके भाई गुरुप्रसाद धर्माधिकारी की अध्यक्षता में एक महती सभा की गई जिसमें वहाँ के बड़े बड़े सर्दार, दैशिक और सैनिक अध्यक्ष तथा राज्य के बड़े बड़े अधिमात्र गण जिनकी संख्या ६७५ थी एकत्र हुए। वहाँ पर सब लोगों ने वादविवादपूर्वक विचार कर के एक निवेदन-पत्र तैयार किया, जिसमें अपने सारे दुःखों का उल्लेख कर उचित और न्यायपूर्वक शासन प्रणाली की प्रतिज्ञा के लिये महाराजाधिराज से प्रार्थना की गई। इस आवेदन पत्र के तैयार हो जाने पर दूसरे ही दिन ७ दिसंबर को वहाँ के प्रधान प्रधान कर्मचारियों ने एकत्र हो, इसे सोने के थाल में रख कर काठमांडव की सारी सेना साथ ले बाजा बजवाते बड़े साज बाज से राजमंदिर हनुमानढोका को प्रस्थान किया।

हनुमानढोका के राजमहल में यह निवेदनपत्र महाराज के सामने प्रस्तुत किया गया और सब लोगों ने उनके सामने अपने अपने दुःखों को निवेदन कर उनसे देशवासियों के प्राण और संपत्ति के रक्षार्थ प्रतिज्ञा और उचित प्रबंध करने के लिये आग्रह किया। इस विषय पर वहाँ एक मास तक महाराज से और देश के उन नेताओं से वादविवाद होता रहा। महाराज इस विषय को टालमटोल से उड़ाना चाहते थे और गोलमगोल उत्तर से उन नेताओं को संतुष्ट करना चाहते थे। उनका यह भी अभिप्राय था कि वे कुछ अधिकार युवराज के हाथ,में देकर शेष प्रधान अधिकार का सूत्र अपने

हाथ में रक्खें। पर नेता लोग इसके विरोधी थे, वे खूब समझते थे कि यदि युवराज का कुछ भी हाथ रहेगा तो वह अपने अत्याचारों के करने में कभी कसर न उठा रक्खेगा और महाराज उस पर कोई रोक न कर सकेंगे। अंत को बड़े वादविवाद के बाद ५ जनवरी सन १८४३ को महाराज निम्न लिखित घोषणापत्र पर राजमहल के दर्बार में सब लोगों के सामने हस्ताक्षर कर सब को सुनाने पर बाध्य हुए—

"सब लोगों पर यह विदित रहे कि इसमें हमारी खुशी और रजामंदी है कि आज से आप लोग श्रीमती महारानी लक्ष्मीदेवी को अपना मालिक समझें और उनकी आज्ञा मानें। हम अपनी खुशी और रजामंदी से उक्त श्रीमती को निम्न लिखित राज्याधिकार प्रदान करते हैं—

१—राजपरिवार के अतिरिक्त समस्त प्रजा के ऊपर कारावास, अंगच्छेदन, देशनिकाला, प्राणदंड, पदच्युति की आज्ञा देना।

२—राजकर्मचारियों का नियत करना, उन्हें पृथक करना, उनके स्थान और पदों का परिवर्तन करना।

३—चीन, तिब्बत और बितानिया की विदेशी शक्तियों से मामला करना।

४—उपरोक्त विदेशी शक्तियों से यथाकाल संधि-विग्रह आदि करना।

हम यह शपथपूर्वक प्रतिज्ञा करते हैं कि हम उक्त श्रीमती

की सम्मति और आज्ञा के विरुद्ध कोई काम न करेंगे। हम इस बात का नितांत निषेध करते हैं कि हमारी कोई प्रजा युवराज की आज्ञा माने और जो कोई उनकी आज्ञा मानेगा वह उक्त श्रीमती के आज्ञानुसार दंडार्ह होगा।"

इस घोषणापत्र से लोगों को कुछ शांति हुई और सब से अधिक संतोष की बात तो यह थी कि युवराज के अत्याचार से उनको बचाने का इसमें उचित प्रबंध कर दिया गया था।

७—थापा मातबरसिंह ।

इस घोषणापत्र से यद्यपि नैपाल के लोगों को थोड़े दिनों के लिये युवराज के अत्याचारों से बचने का अवकाश मिला, पर महारानी लक्ष्मीदेवी का शासन उनके लिये कुछ कम भयंकर न था। महाराज के शासन का अधिकार तो इस घोषणापत्र से बिलकुल ही जाता रहा, पर उन्होंने समय समय पर हाथ डालना एकदम छोड़ा नहीं। अतः वहाँ के लोगों की वही कथा हुई कि मुल्लाजी गए नमाज बख्शाने, रोजा गले पड़ा।

बड़ी महारानी और स्वयं महाराज पांडे लोगों और चौतुरियों के पक्षपाती थे और भीमसेन थापा के पदच्युत किए जाने के समय से अब तक पांडे लोगों ही की तूती बोलती रही। छोटी महारानी लक्ष्मीदेवी थापा लोगों की पक्षपातिनी थीं और उन लोगों के वहिष्करण से उनको उस समय बहुत शोक हुआ था पर वे करतीं तो क्या करतीं, बड़ी महारानी के सामने उनकी कुछ चलती नहीं थी। अब जब उनको शासन का अधिकार मिला तो उन्हें थापा लोगों को फिर बुलाने की फिक्र पड़ी।

भीमसेन थापा के पदच्युत होने और थापा लोगों पर आपत्ति आने पर मातबरसिंह भाग कर हिंदुस्तान चले गए

थे। वहाँ अँग्रेजी सरकार ने उन्हें राजनैतिक कैदी बना शिमले में नजरबंद रक्खा था। महारानी ने उन्हें फिर नैपाल आने के लिये लिखा और उन्हें महामात्य का पद प्रदान करने का वचन दिया। मातबरसिंह ने महारानी की आज्ञा पाते ही शिमले से नैपाल को प्रस्थान किया और वे गोरखपुर पहुँचे। मातबरसिंह को यह विश्वास न था कि नैपाल में पहुँचने पर लोग उन की सहायता करेंगे और उन्हें महामात्य पद प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त होगा। इसीलिये मातबरसिंह दो महीने गोरखपुर में ठहरे रह कर अपने पक्षपातियों की टोह लेते रहे और जब उनको इस बात का विश्वास हो गया कि नैपाल में सब बातें उनके अनुकूल हैं तो वे गोरखपुर से नैपाल की सीमा में घुसे। नैपाल सरकार ने मातबरसिंह का स्वागत किया और उनकी अगवानी के लिये सेना और सरदारों को भेजा जो उन्हें बड़े आवभगत से गोरखपुर से ले आए। जंगबहादुर ने जो स्वयं थापा दल के थे और जिन्होंने अब तक समय न पा कर यह बात गुप्त रक्खी थी अब खुले साँट अपने को थापा दल का प्रकट कर दिया और वे मातबरसिंह को लेने के लिये सेना के साथ गए।

जनरल मातबरसिंह बड़े धूम धड़ाके से १७ अप्रैल १८४३ को काठमांडव पहुँचे। वहाँ के लोगों ने उनके साथ बड़ी सहानुभूति प्रकट की। उन्होंने प्रायः सब लोगों को अपनी

सहायता के लिये सन्नद्ध पाया। मातबरसिंह ने दर्बार से प्रार्थना की कि मेरे चाचा भीमसेन थापा पर आरोपित अभियोगों का खुले दर्बार में विचार किया जाय और थापाओं के सब स्वत्व दिलाए जाँय। दर्बार में सब सर्दार लोग एकत्रित हुए और सब लोगों ने एक मत हो कर थापा लोगों को निर्दोष प्रमाणित किया। भीमसेन थापा पर मिथ्या अभियोग लगानेवालों को प्राण-दंड की आज्ञा दी गई, जाति-वहिष्कृत थापा लोग फिर जाति में लिए गए और उनको धन संपत्ति उन्हें दिलाई गई।

मातबरसिंह का फिर नैपाल में आना और उनका अभ्युदय महाराज राजेंद्रविक्रमशाह को भला न लगा, पर वह कर ही क्या सकते थे और उनका अधिकार ही क्या था। वह मन ही मन कुढ़ते थे पर महारानी के भय से कुछ मुँह पर नहीं ला सकते थे। उनका यह आंतरिक अभिप्राय था कि प्रधान अमात्य फतेहजंग चौतुरिया ही रहें और मंत्रि-मंडल में पांडे लोगों ही की प्रधानता रहे और थापा लोगों को कभी अधिकार न मिले। पर यह उनके मन की बात थी। महारानी पांडे लोगों और फतेहजंग की विरोधिनी थीं और मातबरसिंह को महामात्य पद पर नियुक्त करना चाहती थीं। इसी खींचा खींची में मातबरसिंह को महामात्य पद दिसंबर तक न मिल सका और महाराज ने फतेहजंग को उस पद पर रोक रक्खा। पर अंत को २५ दिसंबर सन् १८४३ को मातबरसिंह

महामात्य और प्रधान सेनापति के पद पर नियुक्त किए गए और चौतुरिया महामात्य फतेहजंग को नैपाल छोड़ कर हिंदुस्तान की ओर भागना पड़ा।

मातवरसिंह के अमात्य नियत होने से पांडे लोगों की शक्ति दब गई और नैपाल-दर्बार में फिर थापा-दल की प्रधानता हुई। इससे पांडे दल के लोग युवराज सुरेंद्रविक्रम के पास एकत्रित हुए और उनको अपने अधिकार में लाने का प्रयत्न करने लगे। पांडे लोगों के मिल जाने का प्रभाव यह हुआ कि युवराज को राज-नियम का प्रतिरोध करने के लिये बल और सहारा मिल गया और वह दबे छिपे अत्याचार करता रहा। महारानी लक्ष्मीदेवी नया अधिकार प्राप्त करने के गर्व से चारों ओर अपनी प्रवलता और शासन का प्रभाव प्रदर्शित करना चाहती थीं। महाराजाधिराज का यह हाल था कि यद्यपि उन्होंने अपने सारे अधिकार महारानी को प्रदान कर दिए थे पर फिर भी वे यथेच्छ, जहाँ उन्हें मौका मिलता था हाथ डालने में कसर नहीं करते थे। अब नैपाल में एक अधिपति की जगह तीन अधिपति थे—राजा, रानी और युवराज। मातबरसिंह प्रधान अमात्य और प्रधान सेनापति तो नियत हो गए पर वे किस के आज्ञानुसार काम करें? वहाँ एक अधिपति तो था नहीं कि उसकी आज्ञा की प्रधानता होती। वहाँ थे तीन। अब तो मातबर चकराए और घबड़ा कर अपना पद त्यागने का विचार करने लगे। उन्होंने इस्तीफा

दिया और नैपाल छोड़ कर हिंदुस्तान में जा कर रहने का विचार किया। पर महारानी ने उनके पद-त्यागपत्र को स्वीकार नहीं किया। अतः मातबर को विवश होकर नैपाल के अमात्य पद पर रहना ही पड़ा।

महारानी लक्ष्मीदेवी एक बड़ी चालाक और मतलबी स्त्री थीं। मातबर को महामात्य बनाने में उनका एक गुप्त अभिप्राय यह था कि उनके सहारे वे अपने पुत्र रणेंद्रविक्रम के लिये मार्ग साफ करेंगी। युवराज सुरेंद्रविक्रम अपने अत्याचार के कारण लोगों की आँख की किरकिरी हो रहा था। ऐसी अवस्था में उन्होंने यह सोचा कि यदि मातबर भी उनसे सहमत होगा तो महाराज राजेंद्रविक्रम को गद्दी से उतार अपने पुत्र रणेंद्रविक्रम को वे नैपाल का राजा बनावेंगी। पर मातबर से उन्हें अपने काम निकालने में अत्यंत दुराशा हुई, क्योंकि मातबरसिंह यद्यपि और बातों में महारानी की आज्ञा को पालन करना अपना कर्त्तव्य समझते थे पर यह वे कभी नहीं मान सकते थे कि ज्येष्ठ पुत्र युवराज सुरेंद्र-विक्रम की उपस्थिति में उनका छोटा भाई नैपाल के राज्य का उत्तराधिकारी बनाया जावे। चतुर महारानी मातबर के इस अभिप्राय को ताड़ गईं कि ये मेरे इस षड्चक्र में नहीं सम्मिलित होंगे अतः वे उनसे उदासीन हो गईं और यद्यपि उनके मुँह पर वे मीठी मीठी बातें करती थीं पर पीठ पीछे उनके प्राण लेने का प्रयत्न ढूँढ़ती थीं।

यह असंभव था कि मातबर महाराज से मिलते। वे अच्छी तरह जानते थे कि महाराज पांडे दल के पक्षपाती हैं। वे उन्हें स्वयं नापसंद करते हैं और कभी उनका विश्वास नहीं कर सकते। मातबरसिंह से स्वयं महाराज अपने प्राण की आशंका से सदा भयभीत रहा करते थे। ऐसी अवस्था में मातबर की दशा साँप छछूँदर की थी। महारानी, जिन्होंने उन्हें महामात्य बनाया था इसलिये खिन्न थीं कि वे उनके षड्चक्र में सम्मिलित नहीं हो सकते थे जिससे वे अपने पुत्र की गद्दी के लिये कोई प्रयत्न नहीं कर सकती थीं और महाराज उनसे स्वयं उदासीन थे और उनके रहने को अच्छा नहीं समझते थे। अब मातबर के लिये सिवाय इस के कोई मार्ग नहीं था कि वे युवराज सुरेंद्र-विक्रम के पक्षपाती बनें और उनसे मिलें। बहुत सोच विचार कर मातबरसिंह ने यह निश्चय किया कि जो कुछ हो मैं युवराज का पक्ष लूँगा। उन का यह भी अनुमान था कि युवराज यद्यपि अपने अत्याचार के कारण प्रजा में दुर्दर्शन हो गए हैं तथापि वे अभी बच्चे हैं और अभी उनके हृदय में क्रूरता और बुराई की जड़ नहीं जमी है। वे अच्छी संगति पा कर सुधर सकते हैं। अतः उन्होंने निःस्वार्थ भाव से युवराज का पक्ष लिया। उन्होंने युवराज के सुधारने के लिये दो उपाय सोचे, एक तो उनके साथ अपने दल के

अच्छे मुसाहब रक्खे जावें और दूसरे यदि वे इस पर भी न सुधरें तो उनको भय और धमकी दिखा कर सुधारा जाय।

महाराज को अपने अनुकूल करने का उन्होंने यह ढंग सोचा कि युवराज सुरेंद्रविक्रम को सुधार कर महाराज को उनके अनुकूल करें और फिर महाराज को इस बात पर उतारू करें कि वे युवराज को अपने स्थान पर नैपाल का सम्राट नियत करें। अपनी इस धुन में मग्न हो उन्होंने कई बार महाराज से बात ही बात में यह भी कहा कि युवराज का चाल चलन अब सुधर रहा है और अब समीप है कि वे शीघ्र इस योग्य हो जावें कि नैपाल के शासन का भार उनके ऊपर डाला जा सके। ऐसा करने से उन्होंने सोचा था कि महाराज को युवराज की योग्यता का विश्वास हो जायगा तो वे उन्हें राज्य का भार सौंप देवेंगे। इतना ही नहीं उन्होंने एक और चाल चलनी प्रारंभ की। वे उधर तो महाराज को युवराज की योग्यता का विश्वास दिलाते जाते थे इधर धीरे धीरे युवराज को भी उसकाते जाते थे जिससे वह अपने पिता को बार बार अपनी योग्यता का परिचय देकर उनसे साम्राज्य पद की याचना करे। इस उभयतोमुखी चाल से मातबर का यह विश्वास था कि वे अपनी चालबाजी से महाराज और युवराज दोनों को प्रसन्न और अनुकूल रख सकेंगे।

महाराज राजेंद्रविक्रम एक अद्भुत प्रकृति के व्यक्ति थे।

यद्यपि वे प्रबंध-कुशल न थे पर उन्हें अपने अधिकार का इतना लोभ था कि वे जीते जी किसी प्रकार का अधिकार किसी को देना नहीं चाहते थे। महारानी लक्ष्मीदेवी को उन्होंने यद्यपि अपने सारे अधिकार एक प्रकट घोषणा द्वारा दे दिए थे पर फिर भी यथावकाश वे प्रबंध में हाथ डालने में न चूकते थे। युवराज से जब जब महाराज से अधिकार देने के विषय में बात चीत हुई और युवराज ने हठ किया तो वे बराबर उन्हें टालते रहे। इस पर मातबरसिंह ने युवराज को अधिकार दिलाने का एक ढंग निकाला। उन्होंने युवराज को नैपाल देश को छोड़ कर हिंदुस्तान चले जाने की सलाह दी। उन्होंने सोचा कि यदि युवराज नाराज होकर हिंदुस्तान की ओर चलने पर तैयार हो जाँयगे तो महाराज उनके निकल जाने के भय से प्रेम-वश उन्हें अपने समस्त अधिकार प्रदान कर देंगे। युवराज उनकी सम्मति पा कर नैपाल से निकल कर हिंदुस्तान चलने को उद्यत हो गए। एक दिन युवराज अपने पिता से रूठ कर दो तीन नौकरों के साथ काठमांडव से हिंदुस्तान की ओर रवाना हुए। हिठौरा स्थान में मातबरसिंह भी एक सेना ले कर युवराज को मिले और दोनों वहाँ एक दिन रहे। महाराज राजेंद्रविक्रम युवराज के रूठ चलने पर उनके पीछे पीछे मनाने के लिये चले और वे भी हिठौरा में इसी बीच में पहुँच गए। यहाँ पिता पुत्र में अधिकार के लिये घोर वादविवाद हुआ, पर महाराज

युवराज को अधिकार प्रदान करने पर सन्नद्ध न हुए। निदान युवराज सुरेंद्रविक्रम वहाँ से आगे बढ़े और उनका दूसरा पड़ाव कर्रा में हुआ। मातवर भी युवराज के साथ सेना लिए कर्रा पहुँचे, पर उनकी सेना के साथ राजकीय ध्वजा नहीं थी क्योंकि ध्वजा सेना के उस भाग के साथ थी जो महाराज के साथ हिठौरा में रह गई थी। युवराज ने सेना को ध्वजा-हीन देख मातबर को ध्वजा लाने के लिये हिठौरा भेजा। मातबर हिठौरा आ कर महाराज से मिले और उन्हें युवराज के अनुहार करने का परामर्श देने लगे, जिस पर महाराज उन पर बहुत बिगड़े और क्रोध के आवेश में आ कर उन्होंने उनके सिर में छड़ी से मार भी दिया। मातबर येन केन प्रकारेण राजकीय ध्वजा ले कर कर्रा पहुँचे। यहाँ से युवराज और मातबर सेना के साथ धुपवाबासा के पड़ाव पर आए। महाराज राजेंद्रविक्रम भी प्रेम-वश हिठौरा से हौड़ाहौड़ किए धुपवाबासा पहुँचे और यहाँ बड़ी कहा सुनी पर युवराज को अपना समस्त अधिकार प्रदान करने पर राजी हुए, पर उन्होंने यह कहा कि अधिकार तो हम दे देवेंगे किंतु हमारे जीते जी गद्दी पर अधिकार हमारा ही रहेगा। धुपवाबासा में १३ दिसंबर सन् १८४४ को घोषणापत्र लिखा गया जिसके अनुसार महाराज ने अपने सारे अधिकार युवराज सुरेंद्रविक्रम को प्रदान किए और मातबरसिंह ने इस घोषणापत्र को सेना के सामने पढ़ कर सुनाया।

यद्यपि इस मामले में मातबर की युक्ति चल गई और युवराज को अधिकार मिल गए पर युवराज ने अधिकार पाने के थोड़े ही दिनों बाद मातबर का तिरस्कार किया। अब महारानी तो मातबर से नाराज थीं ही, युवराज भी, जिसके लिये मातबर ने सब कुछ किया उनसे बिगड़ गए। महाराज उन्हें पहले ही से नहीं चाहते थे। ऐसी अवस्था में मातबर डरे कि ऐसा न हो इन तीन तीन बैरियों में किसी दिन कोई न कोई, विशेष कर युवराज उनके जीवन पर आघात कर बैठे। अतः अब उनको अपनी रक्षा की सूझी। उन्होंने चट तीन रेजिमेंट सेना भरती की और इस सेना में उन्होंने विशेष कर अपने सवर्गी लोगों को ही भरती किया। इस नई सेना पर उन्हें इतना भरोसा था कि उसी के बल से स्वयं महाराज तक उनसे भय खाते थे और उनकी धाक राजा, रानी और युवराज के समान मानी जाती थी।

८—महारानी लक्ष्मीदेवी ।

महारानी लक्ष्मीदेवी को अधिकार का मिलना नैपाल राजमहल को परिस्तान बनने का हेतु हुआ। राजमहल से सब बूढ़ी दासियाँ निकाल दी गईं और उनके स्थान पर युवती छोकरियाँ, जिनकी संख्या एक सहस्र थी नौकर रक्खी गईं। ये छोकरियाँ आफत की परकाला थीं। महीने में इन्हें केवल एक पखवाड़ा राजमहल में बारी बारी काम करना पड़ता था और इनके शेष दिन अपने यारों की गोद में कटते थे। ये छोकरियाँ न केवल दासी थीं अपितु महारानी की बड़ी मुँहलगी और भेदिया थीं। महारानी पर इनका इतना प्रभाव था कि घड़ी भर में किसी भिक्षुक को, जिसे ये चाहें सूबेदार, लफ्टैंट, जनरल, परगनाहाकिम क्या सब कुछ बना सकती थीं और किसी बड़े से बड़े आदमी का प्राण तक ले सकती थीं। लोग सदा इस प्रयत्न में लगे रहते थे कि यदि किसी प्रकार कोई दासी उनके हत्थे चढ़ जाती तो वे अपनी उन्नति का मार्ग निकालते और इसीलिये एक एक दासी के पीछे दस दस बारह बारह जार लगे रहते थे और उनसे अपना बनावटी प्रेम प्रकट करते थे। बड़े बड़े राजकर्मचारी, यदि दैवयोग से कोई महल की दासी उनके अनुकूल हो जाती तो अपना अहोभाग्य समझते थे।

नैपाल देश, जहाँ व्यभिचार का नाम केवल लिखने पढ़ने में आता था महारानी लक्ष्मीदेवी के समय में विशेषतः राजभवन व्यभिचार का क्रीड़ाक्षेत्र बना हुआ था। महाराना से ले कर नीच से नीच दासी उस समय राजभवन में ऐसी कोई न थी जो अपने सतीत्व की शपथ खा सकती, सब ही के उपपति थे। प्रेम वार्ता, व्यभिचार से लेकर घात तक नित्य प्रति राज-महल में हुआ करते थे। मानों ये साधारण बातें थीं जिनका होना वहाँवालों के जीवन के लिये अत्यंतावश्यक था। धर्म और नीति के स्थान में वहाँ कूटनीति का साम्राज्य था। छल, कपट, षड्यंत्र इत्यादि से वहाँ नित्य प्रति बड़ी बड़ी राजनैतिक घटनाएँ हुआ करती थीं और यह छोटी सी रियासत उस समय युरोप के मध्यकालिक अवगुणों का कार्य्यक्षेत्र बन रही थी।

देश की ऐसी दुरवस्था में बड़े बड़े राजनीतिज्ञों के लिये यह आवश्यक था कि वे अपना बनावटी प्रेम प्रगट कर येन केन प्रकारेण किसी न किसी दासी के दिल को अपने काबू में करें और उसके द्वारा दर्बार की प्रत्येक घटनाओं और चेष्टाओं की खबर रखते हुए अपने को देश-कालानुसार प्रयत्न में लगावें। सतयुग की बातों का वहाँ नामोनिशान नहीं था, कलियुग अपने चारों चरणों से पूर्ण अधिकार रखता हुआ राज्य कर रहा था। ऐसी अवस्था में सीधे सादे सत्युगी धार्मिक पुरुषों का वहाँ गुजारा नहीं था और उन्हें पद पद पर

अपने जीवन के लाले पड़ रहे थे। सत्यभाषण वहाँ मूर्खता और अलौकिकता कहा जा सकता था, सच्चरित्र उलटे जीवन को दूभर करनेवाला था। ऐसी गिरी दशा में देशकालज्ञ जंगबहादुर भी दर्बार की एक मुँहलगी दासी को अपनी प्रेमिका बनाने में नहीं चूके। उनका यह प्रेम निष्फल नहीं गया और सब प्रकार से उन्हें लाभकारी प्रतीत हुआ। उन्हें नित्य प्रति अपनी प्रेमिका से दर्बार की छोटी से छोटी वार्त्ताओं तक का बराबर पता मिला करता था और उसी के अनुसार वे अपनी उन्नति के लिये मार्ग साफ करते जाते थे।

६—छेड़ छाड़ और भीषण प्रतिज्ञा।

मातबरसिंह धीरे धीरे प्रवल होते गए। उनकी बढ़ती शक्ति को देख नैपाल के सब लोग भय खाते थे और किसी की हिम्मत नहीं पड़ती थी कि उनके सामने उनकी बात काट दे। वे अपने इस उद्भव के मद में उन्मत हो गए थे और उन्हें अपने और पराये का भेद जाता रहा था। वे किसी की अच्छी और हित की बातों तक को भी नहीं सुन सकते थे। घमंडी होने के अतिरिक्त वे ईर्ष्यालु भी थे और किसी के उद्भव को देख नहीं सकते थे। दूसरे की कौन कहे स्वयं जंगबहादुर तक का उद्भव, जो उनके सगे भानजे और थापा के हितचिंतक थे उन्हें भला नहीं लगता था।

एक दिन दर्बार में सब सर्दार बैठे हुए थे और वहाँ कुछ किसानों का निवेदनपत्र विचार के लिये उपस्थित किया गया जिसमें निवेदकों ने प्रार्थना की थी कि फसिल पाला मार गई है, अतः सर्कारी मालगुजारी माफ की जावे। महामात्य मातबरसिंह ने यह आज्ञा दी कि मालगुजारी की माफी नहीं की जा सकती। इस पर अन्य सदस्य तो हूँ हाँ करते रहे पर जंगबहादुर से न रहा गया। उन्होंने कहा कि "इस मामले की पहले तहकीकात (जाँच) होनी चाहिए और तब आज्ञा होनी चाहिए।" इस पर मातबर लाल हो गए

और बोले-"तुम लड़के हो। चुप रहो। तुम्हें ऐसी महती सभा में बोलने का अधिकार नहीं है।" इस पर जंगबहादुर से भी न रहा गया और उन्होंने खुले साँट कहा कि "मैं लड़का नहीं हूँ और न लड़कपन करता हूँ, अन्य सदस्य जो चुप चाप बैठे हाँ में हाँ मिलाते हैं अवश्य लड़कपन करते हैं।" जंगबहादुर के इस उत्तर को सुन महाराज और युवराज ने जंगबहादुर का पक्ष लिया और कहा कि "जंगबहादुर ठीक कह रहे हैं। इस बात की अवश्य जाँच होनी चाहिए कि फसिल को पाला से हानि पहुँची है कि नहीं ?"

उस समय तो मातबर यह सोच कर चुप रह गए कि बात के बढ़ाने से उनकी प्रतिष्ठा में बाधा थी, पर भीतर ही भीतर वे जंगबहादुर को दर्बार से हटाने के लिये ढंग सोचने लगे, क्योंकि उन्हें भय था कि जंगबहादुर ही दर्बार में एक ऐसा पुरुष है जो उनकी बातों को काटेगा। अंत को उन्होंने जंगबहादुर को दर्बार से निकालने के लिये यह ढंग निकाला कि महारानी से जंगबहादुर के लिये आज्ञापत्र लिखवा दिया कि वे महाप्रभु सुरेंद्रविक्रम की सेवा में उपस्थित होकर उनके साथ रहा करें। इस प्रकार जंगबहादुर को फिर उन्हीं युवराज की सेवा करने के लिये बाधित होना पड़ा कि जिनसे कई बार उनके प्राण जाते जाते बचे थे।

इसके थोड़े दिनों के बाद ही इंद्रजात्रा के उत्सव का समय आया और हर वर्ष की तरह महाराज की सवारी बड़ी धूम

धाम से निकली। महाराज एक सोने के हौदे में यात्रा के आगे थे और उनके पीछे जनरल मातबरसिंह का हाथी था, जिस पर वे एक चाँदी के हौदे में बैठे थे। उसके पीछे अन्य राज-कर्मचारी, दर्बारी, सेनाध्यक्ष आदि हाथियों पर बैठे जा रहे थे। संयोग वश जंगबहादुर भी एक हाथी पर सवार इस यात्रा के साथ थे। यात्रा में हाथी आगे पीछे जा रहे थे, इसी बीच में जंगबहादुर ने अपना हाथी बढ़ाया और वे मातबरसिंह के हाथी से बढ़ कर आगे निकल गए। भला यह कब हो सकता था कि मातबर किसी के हाथी को अपने आगे बढ़ता देख सकते। जंगबहादुर के हाथी को आगे बढ़ते देख कर उनसे न रहा गया। क्रोध से लाल होकर अपने भाव को छिपा कर उन्होंने जंगबहादुर पर बौछार करते हुए कहा—"शाबाश जंगबहादुर! शाबाश। आज मैं तुम्हें हाथी पर सवार देख बहुत प्रसन्न हुआ।" जंगबहादुर उनके भावों को ताड़ गए और चट बोल उठे कि "भला, जब मैं आपकी नायबी में हाथी पर न चढ़ूँगा तो कब चढ़ूँगा?" मातबर उनकी यह बात सुन दंग हो गए और मन ही मन कुढ़ कर रह गए।

इस प्रकार कई बार छेड़ छाड़ होने से जंगबहादुर और मातबरसिंह के बीच मनमुटाव हो गया था। पर दोनों परस्पर मन ही मन कुछ सोच समझ कर चुप रह जाते थे। मातबर मौका पाकर जंगबहादुर के ऊपर ताना मारने से नहीं चूकते थे, पर जंगबहादुर उनसे बार बार आँख बचाते जाते थे। एक

बेर वे अपनी माता को मातबर के घर ले कर गए थे, वहाँ जंगबहादुर की माता जब मातबर से मिलीं तो मातबर ने कुशल प्रश्न के अनंतर उनसे इस प्रकार ताने की बात कही कि "बहन, अब की बार तुम बहुत दिनों पर मेरे घर आई हो। पर अब आप मेरे घर ऐसे क्यों आने लगीं, आप समझती होंगी कि आपका पुत्र जंगबहादुर मेरी बराबरी का है। पर बहन, तुम्हारी यह भूल है, अभी जंगबहादुर को मेरे बराबर होने में बहुत कसर बाकी है।" जंगबहादुर यह बात सुन कर भी उसे अनसुनी कर के दूसरी ओर चले गए।

महारानी लक्ष्मीदेवी के दर्बार के अंधेर का परिचय दिया जा चुका है। महारानी का अत्यंत विश्वासपात्र और प्रेमपात्र वहाँ सर्दार गगनसिंह था। यह गगनसिंह पहले राजमहल में दास था, पर भाग्यवश महारानी की उस पर कृपा हो गई और वह बढ़ते बढ़ते जनरल हो गया था। उसके और महारानी के परस्पर प्रेम का हाल स्वयं महाराज राजेंद्रविक्रम तक को मालूम था। पर महाराज छोटी महारानी के भय से गगनसिंह को कुछ कह नहीं सकते थे। यही सर्दार गगनसिंह महारानी लक्ष्मीदेवी के अधिकार प्राप्त होने के समय सब कुछ का कर्ता धर्ता था और महारानी प्रत्येक बात में उसकी सम्मति लेती थीं। वह राजमहल ही में रहता था और रात को अकेले महारानी के पास एकांत में बैठा करता था। इसके प्रेम संबंध को नैपाल के सभी देशक और सैनिक अध्यक्ष जानते थे

पर किस के मुँह में बत्तीस दाँत थे जो इसके विरुद्ध मुँह खोल सकता।

महारानी की दासियों के भी चरित्र और उपयोगिता और शक्ति का हाल लिखा जा चुका है कि वे अपने प्रेमियों के लिये क्या क्या कर सकती थीं। एक दिन की बात है कि एक दासी ने महारानी से अपने प्रेमपात्र एक सूबेदार के लिये लफ्टेंटी के लिये आज्ञापत्र प्राप्त किया। दासी ने इस आज्ञापत्र को अपने प्रेमपात्र को दिया और वह उस आज्ञापत्र को लिए हुए उस लफ्टेंट की तलाश में निकला जिस के स्थान पर महारानी ने अपने आज्ञापत्र द्वारा दूसरा लफ्टेंट उसे नियत किया था। दैवयोग से वह दर्बार जा रहा था कि मार्ग में उसे वह लफ्टेंट मिल गया। उसने उसे महारानी का आज्ञापत्र दिखाया और वलात् उसकी चपरास बल्ला छीन कर अपनी पगड़ी में लगा वह चलता हुआ। बेचारा लफ्टेंट रोता झींखता अपने घर आया और उसने महामात्य मातबरसिंह के पास अपने पदच्युत किए जाने की फरियाद की। उसका निवेदनपत्र कौंसिल दर्बार में उपस्थित किया गया, पर दर्बार ने उसके आवेदनपत्र पर यह कह कर कुछ विचार नहीं किया कि महारानी की आज्ञा में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता।

दर्बार में इस दीन सूबेदार के प्रार्थनापत्र पर विचार करने से इनकार होने की आज्ञा को सुन सब लोगों ने दाँतों तले अँगुली दाबी और वे ठकमारे से हो गए। पर जंगबहादुर के चचेरे भाई

देवीबहादुर से, जो एक बिल्कुल सच्चा और सीधा आदमी था न रहा गया। वह दर्बार के इस अन्याय को सुन कर लाल हो गया और उसने बात ही बात में महारानी और गगनसिंह के अनुचित प्रेम संबंध पर भी कुछ न कुछ बौछार कर मारी।

देवीबहादुर के इस आक्षेप करने का समाचार लोगों ने महारानी तक पहुँचाया। महारानी देवीबहादुर की इस मुँहजोरी को सुन कर बहुत क्रुद्ध हुईं। उन्होंने फौरन् देवीबहादुर के हथकड़ी डालने की आज्ञा दी और मातबरसिंह को बुला भेजा। मातबर आज्ञा पाते ही राजमहल में पहुँचे तो महारानी ने उनसे कहा कि "मैंने सुना है कि देवीबहादुर ने मेरे ऊपर लांछन लगाया है। इस प्रकार का लांछन राजपरिवार पर लगाना अच्छा नहीं है, इसकी जाँच एक दर्बार में होनी चाहिए।" मातबर ने महारानी की आज्ञा पाते ही कौंसिल का अधिवेशन किया जिसमें देवीबहादुर को प्राणदंड दिए जाने की आज्ञा हो गई। महाराज ने दर्बार की आज्ञा का समर्थन किया और बेचारे देवीबहादुर की गर्दन मारने के लिये लोग उसे भचकोश ले गए।

जंगबहादुर से यह अनीति नहीं देखी गई, पर वे करते तो क्या करते। उनका न कुछ कौंसिल में अधिकार था और न उस समय वे उसके बचाने के लिये कोई प्रयत्न ही कर सकते थे। पर उनका मन माना नहीं और वे बड़ी आशा से अपने मामा मातबरसिंह के पास पहुँचे, क्योंकि उन्होंने यह

सोचा था कि यदि मातबर चाहेंगे तो देवीबहादुर के प्राण बच जाँयगे। उनके पास जा जंगबहादुर ने बड़ी आशा से दृढ़तापूर्वक कहा—

"आप मेरे मामा हैं और नैपाल के महामात्य हैं। मैं आप से और क्या आशा करूँ, आप देखते हैं कि देवीबहादुर नितांत निरपराध है और उसे अन्यायपूर्वक प्राणदंड दिया जा रहा है। मेरे समान वह भी आप का भांजा है। आप यह सब कुछ जानते हुए भी उसके प्राण बचाने की कोई युक्ति नहीं निकालते। इसमें कोई संदेह नहीं कि यदि आप चाहें तो उसके प्राण बच सकते हैं"।

मातबर—"जंगबहादुर, तुम्हारा कहना सब कुछ ठीक है पर पांडे लोगों की प्रवलता से दर्बार की अवस्था में अब विलक्षण रूप से गड़बड़ी मच रही है। तुम जानते हो अभी मुझे महामात्य पद पर नियुक्त हुए बहुत थोड़े दिन हुए हैं और यह उचित नहीं जान पड़ता कि मैं एक नया आदमी महारानी की किसी आज्ञा में हस्तक्षेप करूँ। मैं हाथ जोड़ता हूँ कि अब तुम इस विषय में मुझे विशेष कष्ट न दो। यदि महारानी मेरे निज पुत्र का प्राण लेना चाहें तो भी मैं उनकी आज्ञा मानने के सिवाय कुछ नहीं कर सकता। मुझ में उनकी आज्ञा मेटने की शक्ति नहीं है।"

जंगबहादुर—"पर यह महामात्य का कर्तव्य है कि वह महाराज और महारानी के विचारों को पलट दे; न कि

खुशामद से उनका मिजाज बढ़ावे और हाथ जोड़े हुए उनके अन्यायपूर्ण अत्याचारों पर मुँह ताकता रहे। आप यह स्वीकार करते हैं कि देवीबहादुर पर दंड की आज्ञा अन्यायपूर्ण है, क्या इस पर भी आप कुछ नहीं करेंगे ?"

मातबर जंगबहादुर के इस नीतिपूर्ण वचन को न सह सके और आपे से बाहर हो गए और डाँट कर बोले—"मत बको, अभी तुम मुझे सीख देने योग्य नहीं हुए हो। यदि महारानी आज्ञा दें तो मैं तुम्हें मार डालूँगा, तुम मुझे मार डालोगे।"

जंगबहादुर ने विस्मित होकर कहा--"क्या आपके कहने का यह अर्थ है कि मुझे आपका भांजा हो कर भी यही उचित है कि यदि महारानी आज्ञा दें तो मैं आपको मार डालूँ।"

मातबर—"हाँ, मेरा यही अभिप्राय है।"

मातबरसिंह की यह बात सुन जंगबहादुर को निराशा हो गई और उस समय मातबर से विशेष वकवाद में समय खोना उन्हें उचित नहीं प्रतीत हुआ। वे वहाँ से उठे और घोड़े पर सवार हो घोड़ा सरपट फेंकते हुए 'भचकोश' पहुँचे जहाँ प्राणदंड के अपराधियों की गर्दन मारी जाती थी।

घातक देवीबहादुर के हाथ बाँध कर अपना फर्सा उठा चुका था और समीप था कि वह उसे उसकी गर्दन पर चला कर उसके जीवन की समाप्ति कर देता कि अचानक जंगबहादुर का घोड़ा वहाँ दूर से देख पड़ा। जंगबहादुर ने उनकी यह

अवस्था देख कर 'ठहरो ठहरो' की हाँक लगाई। घातक ने उनकी हाँक सुन कर समझा कि सवार दंडी का क्षमापत्र ले कर आ रहा है अतः उसने अपने हाथ को रोक दिया। जंगबहादुर पहुँचते ही घोड़े पर से कूद पड़े और देवीबहादुर से लपट गए और उन्होंने उसके कान में धीरे से कहा—"शांति धारण करो, परमात्मा में दृढ़ विश्वास रक्खो, मैं प्रतिज्ञा और शपथ करता हूँ कि तुम्हारा बदला बिना लिए न रहूँगा। ईश्वर का ध्यान करो और शांतिपूर्वक उस में लवलीन हो।" देवीबहादुर से यह कह रोते और आँसू पोंछते हुए वे उससे बिदा हुए। उनका घोड़े पर सवार होना था कि घातक ने अपने फर्से से देवीबहादुर का सिर धड़ से अलग कर दिया।

१०—राजमहल में खून।

यह लिखा जा चुका है कि मातबरसिंह को भारत से बुला कर महामात्य के पद पर नियुक्त करने से महारानी लक्ष्मीदेवी ने यह आशा की थी कि मातबर उनके सहायक रहेंगे और उनकी सहायता से वे अपने पुत्र रणेंद्रविक्रम को नैपाल के राजसिंहासन पर बैठाल सकेंगी। उनकी यह आशा मन ही में रह गई और जनरल मातबर युवराज सुरेंद्रविक्रम के पक्षपाती हो गए और उन्होंने ऐसी युक्ति लड़ाई कि महाराज को विवश होकर युवराज को समस्त अधिकार प्रदान करने पड़े। इतना ही नहीं मातबरसिंह अपनी रक्षा के लिये एक प्रबल सेना अपने साथ रखने लगे थे जिससे महारानी उनसे स्वयं भी भय खाती थीं और खुल्लमखुल्ला सहसा उनका अनादर वा तिरस्कार नहीं कर सकती थीं। यद्यपि सदा वे उनके मुँह पर ऐसी बातें किया करतीं कि जिससे मातबर को उनके आंतरिक भावों का पता न चले तथापि भीतर ही भीतर वे उनके प्राण लेने की फिक्र में रहती थीं।

महाराज राजेंद्रविक्रम, जैसा पहले लिखा गया है। मातबर की नियुक्ति के प्रारंभ से ही विरोधी थे और उन्हें जनरल फतेहजंग चौतुरिया को पृथक् कर उसके स्थान पर मातबर का नियोग भला नहीं लगा था। पर वे असमर्थ थे और

महारानी के भय से दम नहीं मार सकते थे। मातबर की बढ़ती हुई शक्ति से उन्हें सदा भय लगा रहता था कि कहीं ऐसा न हो कि वे किसी समय मेरे जीते जी मुझे युवराज को राज्य सिंहासन प्रदान करने के लिये वाधित करें। पाठकों को मालूम होगा कि वे अधिकार के इतने लोलुप थे कि अपने अधिकारों को प्रदान करने पर भी वे यथेच्छ अवसर पा कर हस्तक्षेप करने में नहीं चूकते थे, पर साथ ही भीरु भी इतने थे कि सदा "मनस्यन्यद्वचस्यन्यत्" मुँह देखी बातें किया करते थे। उनमें आत्मिक वल और दृढ़ता का इतना अभाव था कि यद्यपि वे महारानी और गगनसिंह के प्रेम को भी स्पष्ट रूप से जानते थे और उन्हें यह भी ज्ञात था कि देवीवहादुर को निरपराध प्राणदंड दिया गया है, पर वे अपनी भीरुता और दुर्वल प्रकृति के वश कुछ न कर सकते थे।

युवराज सुरेंद्रविक्रम एक अद्भुत, अस्थिर वा चंचल प्रकृति के पुरुष थे जिन्हें अपने शुभचिंतकों का क्या अपने हित अहित का ही ज्ञान नहीं था। उन्होंने मातबरसिंह का, जिन्होंने उनके लिये सब कुछ किया तिरस्कार किया था जिससे बूढ़े मंत्री के चित्त को बहुत दुःख हुआ और भयभीत हो उन्हें अपने साथ एक सेना रखनी पड़ी।

मातबरसिंह प्रबंधकुशल, वीर पर घमंडी और दुर्वल हृदय के पुरुष थे और इसी कारण उनके कुछ हितेच्छु भी उनके विरुद्ध हो गए थे। स्वयं उनके भांजे जंगबहादुर जैसे उनके

शुभचिंतक उनके स्वभाव और दुर्बल हृदय के कारण उनसे नाराज हो गए थे।

राज-दर्बार की उस समय विलक्षण नीति हो रही थी। वहाँ बात बात में चालबाजी, षड्यंत्र, साठगाँठ से काम चलता था, सत्य व्यवहार, सत्य नीति का वहाँ कोई नाम तक नहीं लेता था।

महारानी को यद्यपि मातबरसिंह से यह आशा न थी कि वे उनके बेटे रणेंद्रविक्रम को राजगद्दी पर बैठालने में उनकी सहायता करेंगे पर उन्होंने अपनी यह आशा बिलकुल छोड़ नहीं दी थी, उन्हें प्रबल आशा थी कि वे अपने प्रिय प्रेमपात्र गगनसिंह की सहायता से एक न एक दिन अपने इस मनोरथ को अवश्य पूर्ण कर सकेंगी। मातबर से नाराज हो वे उन्हें अमात्य पद से पृथक् तो न कर सकीं पर उन्होंने उनसे राज्य के प्रत्येक काम में सलाह लेना बंद कर दिया और स्वयं सर्दार गगनसिंह की सलाह से वे राज्य का सब काम चलाती थीं और किसी को उनकी आज्ञा में हस्तक्षेप करने का साहस नहीं होता था, यहाँ तक कि महामात्य मातबरसिंह को भी हाँ में हाँ मिलानी पड़ती थी।

सर्दार गगनसिंह को मातबरसिंह की बढ़ती हुई शक्ति अच्छी न लगी और यद्यपि गगनसिंह महारानी की आड़ में सब कुछ करते धरते थे पर फिर भी वे खुल कर यह नहीं कह सकते थे कि यह मेरी आज्ञा है। और यदि ऐसा कहते भी

तो कोई कर्मचारी मातबरसिंह के होते हुए उनकी आज्ञा पालन करने को तैयार नहीं होता। इस लिये गगनसिंह इस युक्ति में थे कि किसी न किसी तरह यदि मातबर अलग हो जाते तो मैं महारानी की कृपा से अपने लिये अमात्य पद का मार्ग साफ कर पाता और इस प्रकार राज्य के सारे अधिकार मेरे हाथ लग जाते।

देवीबहादुर के प्राणदंड के विषय में जंगबहादुर का मातबरसिंह से उलझना क्या था, गगनसिंह को सोने की चिड़िया हाथ लगी। वे अपने मन में यह सोचने लगे कि यदि जंगबहादुर उनके हत्थे चढ़ जाते तो वे अपने अभीष्ट को पूरा कर सकते। पर जंगबहादुर का हत्थे चढ़ना खेल का काम नहीं था। देवीबहादुर के मरने से वे सचेत हो गए थे और उन्हें अनुभव हो गया था कि ऐसे दर्बार में मुँह बंद करके देश-कालानुसार सजग रह कर काम करने की आवश्यकता है। अब गगनसिंह करते तो क्या करते, सारे नैपाल में उन्हें कोई आदमी ऐसा दिखाई नहीं देता था जो मातबर को मार सके। हाँ यदि कोई व्यक्ति था तो वह जंगबहादुर था जो कठिन से कठिन जोखम और साहस का काम कर सकता था और उससे मातबर से कहा सुनी भी हो चुकी थी। उन्होंने सोचा कि ऐसा न हो यह मामा भांजे का झगड़ा ठंढा पड़ जाय। गगनसिंह ने बहुत सोच विचार कर जंगबहादुर से काम लेने और मातबर के

विरुद्ध षड्चक्र रचने का अपने मन में एक चिट्ठा तैयार किया और वे मई के महीने में पहर रात के समय महारानी के पास राजमहल में पहुँचे। उनके इस काम में हड़बड़ी मचाने का सब से प्रवल हेतु यह था कि उनको भय था कि ऐसा न हो कि जंगबहादुर की क्रोधाग्नि धीमी पड़ जाय और मैं उससे उपयोग न ले सकूँ। क्योंकि उनको जंगबहादुर की उद्दंड प्रकृति से यह विश्वास था कि यदि मनानीत न होगा तो वे स्पष्ट शब्दों में निर्भयता से इनकार कर जाँयगे।

गगनसिंह राजमहल में महारानी के भवन में गए और चुपके से महारानी के कान में एकांत में कहने लगे—"यह श्रीमती की कृपा थी कि आपने मातबर के देश-निकाले की आज्ञा को रद करके उसे फिर अपने देश में बुलवाया और इस पद पर नियुक्त किया। पर मातबरसिंह कृतघ्न हो गया है, वह आपकी हितचिंतकता न कर आपके विपक्षी युवराज का पक्ष ले कर आप के विरुद्ध हो गया। मुझे गुप्त रीति से पता चला है कि अब उसका विचार है कि थोड़े ही दिनों में वह अपनी नई भरती की हुई सेना के वल से महाराज को वलपूर्वक युवराज सुरेंद्रविक्रम को राजसिंहासन प्रदान करने पर वाधित करनेवाला है। ऐसे समय में यह आवश्यक है कि आप महाराज से मिल जाइए और जहाँ

तक शीघ्र हो सके इसकी सूचना महाराज को पहुँचा दीजिए। इसमें एक मुहूर्त की भी देर करनी उचित नहीं है।"

यह बात सुनते ही महारानी के पैर के तले से मट्टी निकल गई, वे भय के मारे काँपने लगीं। वे वहाँ से दौड़ी हुई महाराज के महल में गईं। महाराज उस समय सो रहे थे। महारानी ने महाराज को जगाया और वे भय से काँपती हुई बोलीं–"मुझे आज एक विश्वासपात्र व्यक्ति द्वारा पता चला है कि मातबरसिंह दो एक दिन में आपको शस्त्रों के बल से युवराज सुरेंद्रविक्रम को राजगद्दी देने के लिये बाधित करनेवाला है। इस समय हमारा विश्वासपात्र मित्र और शुभचिंतक फतेहजंग भी नहीं है, वह हिंदुस्तान में भाग कर, गया में रहता है। यहाँ कोई अन्य मनुष्य ऐसा दिखाई नहीं पड़ता जो हमें इस गाढ़े दिन काम आवे और अपनी उचित सम्मति दे और हमारे प्राणों को संकट से बचा सके। आप यह कभी मत समझें कि मातबर युवराज का हितचिंतक है। वह युवराज की आड़ में अपना काम कर रहा है। उसका यह आंतरिक अभिप्राय है कि थोड़े दिनों तक युवराज के नाम से शासन कर जब वह अपने विरोधी शत्रुओं से मार्ग को साफ कर ले तो स्वयं राज-सिंहासन पर अधिकार कर खुल्लमखुल्ला नैपाल का सम्राट् बन स्वयं शासन करे। आपको मालूम है कि आज कल उसके यहाँ लोग झुंड के झुंड नित्य सलामी के लिये जाते हैं

और बहुत कम लोग श्रीमान् को सलाम करने आते हैं। आप उस चालाक, धोखेबाज दुष्ट से अलग हो जाइए, नहीं तो एक सप्ताह के भीतर ही हम लोगों का जीवित रहना कठिन हो जायगा।"

महाराज राजेंद्रविक्रम को महारानी से यह समाचार सुन कुछ विशेष भय नहीं हुआ। उन्हें ये सब बातें पहले से ही मालूम थीं पर महारानी से उन्होंने इसलिये कहना उचित नहीं समझा था कि मातबर उनका आउर्दा है और महारानी को उसके विरुद्ध बातों का विश्वास न होगा। पर अब उन्होंने महारानी को भी वही कहते सुना तो उन्हें मन ही मन हर्ष हुआ कि भला महारानी का अपने प्रवल सहायक पर से विश्वास तो उठा। उन्हें यह जान कर और भी हर्ष हुआ कि महारानी मातबर की प्रवल शत्रु हो गई हैं और उसके प्राण लेने पर उतारू हैं। अब क्या था, उन्हें मुँहमाँगी मुराद मिली। उनकी बहुत दिनों से यह प्रवल इच्छा थी कि जिस प्रकार हो सके वे मातबरसिंह को अलग करें। उन्हें यह प्रवल आशंका थी कि यदि मातबरसिंह रह गए तो एक न एक दिन उन्हें अपना सारा अधिकार युवराज को दे कर राजगद्दी को परित्याग करना पड़ेगा। वे चाहते थे कि यदि मातबर किसी प्रकार से मार डाला जाता तो वे अपने अधिकारों की रक्षा कर सकते और उनके स्थान में किसी ऐसे बुद्धू को महामात्य पद पर नियुक्त

करते जो उनके आज्ञानुसार चल कर उन्हें मनमानी करने में रोक टोक न करता। इसलिये महाराज भी महारानी के साथ इस षड्चक्र में जो मातबरसिंह के प्राण लेने के लिये वे रचनेवाली थीं सम्मिलित होने के लिये सन्नद्ध हो गए। महाराज ने कहा कि-"आप जो कुछ कह रही हैं ठीक है और इसके लिये हम लोगों को उचित प्रबंध करना चाहिए। जहाँ तक शीघ्र हो सके आप कोई ऐसी युक्ति निकालिए कि मातबर को अपने मनोरथ साधने का अवकाश न मिले और उसका काम शीघ्र तमाम कर दिया जाय।"

इस रात को तो इतना ही हो कर रह गया और दूसरे दिन महारानी और गगनसिंह ने मिल षड्यंत्र का चिट्ठा तैयार किया और निश्चय हो गया कि मातबर के मारने का काम जंगबहादुर से लिया जाय। उस समय जंगबहादुर दर्बार में उपस्थित नहीं थे अतः यह निश्चित हुआ कि उनके बुलाने के लिये कोई आदमी उनके घर पर थापाथाली भेजा जाय जो उन्हें अपने साथ ले आवे। गगनसिंह ने चिट्ठी लिखी और कुलमनसिंह को बुला कर कहा कि तुम अभी इस चिट्ठी को लेकर जंगबहादुर के पास जाओ और उसे अपने साथ लाओ।

कुलमनसिंह गगनसिंह की चिट्ठी लेकर थापाथाली गया। जंगबहादुर कुलमनसिंह को देख कर विस्मित हुए और उन्होंने उससे आने का कारण पूछा। कुलमनसिंह ने

सर्दार गगनसिंह की चिट्ठी उनके हाथ में दे दी। चिट्ठी में यह लिखा था कि-"आप चिट्ठी देखते तुरंत चले आइए, एक बड़ी आवश्यक बात आ पड़ी है और उसमें आपकी सम्मति लेने की बड़ी आवश्यकता है।" जंगबहादुर चिट्ठी पढ़ कर बहुत चकराए क्योंकि आज तक कभी न तो गगनसिंह ने और न महारानी ने उन्हें किसी बात में सम्मति देने के लिये बुलाया था। उनके लिये यह एक नई बात थी। अस्तु वे अपने घोड़े पर सवार हो उसे दौड़ाते हुए महारानी के राजमंदिर में पहुँचे। यहाँ सर्दार गगनसिंह पहले ही से बैठे उनकी बाट जोह रहे थे। गगनसिंह जंगबहादुर का हाथ पकड़ बातें करते हुए महारानी के महल में उन्हें लिए चले गए। वहाँ एक कोठरी में ले जा कर उन्होंने कहा—"आप यहाँ बैठिए, मैं महारानी को आपके आगमन की सूचना दे दूँ। वे अभी आपको बुलावेंगी।" यह कह कर वे महारानी के महल में ऊपर चले गए और थोड़ी देर के बाद पलट कर बोले "चलिए, महारानी आप को बुलाती हैं।" अब वे जंगबहादुर को ले कर महारानी के दर्बार में गए, पर राह में केवाड़ों को बंद करते गए। जंगबहादुर डरते और सकबकाते हुए महारानी के सामने पहुँचे। जंगबहादुर ने महारानी को देखते ही उन्हें सलाम किया और वे उनके सामने हाथ बाँध कर खड़े हो गए। महारानी ने उनसे कहा—"जंगबहादुर हम क्या

कहें, तुमने सुना ही होगा कि मातबरसिंह अपने स्वार्थ के लिये बाप बेटे और माँ में विरोध का बीज बो रहा है। समझदार उसकी इस चाल से अच्छी तरह समझ सकते हैं कि उसका अभिप्राय परस्पर फूट कराने से सिवाय इसके और क्या हो सकता है कि हम लोगों को लड़ा लड़ा कर मार डाले और स्वयं राज्य का अधिकारी बन बैठे। राज-परिवार पर बड़ी दुर्घटना उपस्थित है और इस कुचक्र से बचानेवाला हमें सिवाय तुम्हारे इस समय कोई दूसरा आदमी दिखाई नहीं पड़ता, जो ऐसे गाढ़े समय हमारे काम आ सके और राज-परिवार का प्राण इस धोखेबाज अमात्य के हाथों से बचा सके। हमारी यह इच्छा है कि तुम उस दुष्ट को मार डालो। महाराज ने उसके लिये लालमुहर* कर दी है और तुम्हें इसमें डरने की कोई बात नहीं है।"

महारानी जंगबहादुर से यह कह कर दर्बार से उठीं और चट महाराज की बैठक में गईं और वहाँ से महाराज को साथ लिए बात की बात में पलटीं। महाराज ने उन्हें देखते ही उनके हाथ में लालमुहर का कागद दिया और कहा—"जा, मातबर को मार डाल।" जंगबहादुर ने लालमुहर अपने हाथ में ले कर कहा—"जो आज्ञा, मैं आज ही रात को मातबर का काम तमाम कर डालूँगा।" अब

* एक मुहर जिसे नैपाल के महाराज ऐसे अपराधी के मारण पत्र पर करते हैं जिसके मारने की आज्ञा व्यवस्थापक सभा देती है। वहां बिना लालमुहर हुए कोई मारा नहीं जाता।

क्या था गगनसिंह मन ही मन गाजने लगा कि "अब दो तीन घड़ी में मेरा मनोरथ पूरा हो जायगा, मातबरसिंह के जीवन की इति श्री हो जायगी और फिर संसार में कौन ऐसा पुरुष है जो मेरे मार्ग में अवरोध कर सकेगा। महारानी तो मेरे वश ही में हैं वे मुझे सीधे महामात्य पद पर नियुक्त कर देंगी और यदि भाग्यवश मैं महामात्य पद पर नियुक्त न हो सका तो कोई हो, पर वह मेरे हाथ की कठपुतली ही बना रहेगा।"

गगनसिंह ने फौरन कुलमनसिंह को अलग ले जा कर कहा कि तुम दौड़ते हुए मातबरसिंह के पास जाओ और उससे कहो कि—"महारानी को शूल का रोग हो गया है। वे बहुत बेचैन हैं और पड़ी तड़प रही हैं। उन्होंने आपको अभी बुलाया है।" कुलमनसिंह तो उसका भेदिया ही था, वह फौरन वहाँ से दौड़ा हुआ मातबर के घर पर गया और उसने मातबरसिंह से अपना बनावटी सँदेसा बड़ी घबराहट से कहा। मातबरसिंह कुलमनसिंह की बात सुन उसी दम अकेले रात को दर्बार चलने के लिये तैयार हो गए। उनके चलते समय उनके पुत्र रणोज्ज्वलसिंह ने कहा कि—"आप अकेले इस समय कहाँ दर्बार को जा रहे हैं, भला दो चार आदमियों को तो अपनी रक्षा के लिये अपने साथ लेते जाइए, कोई जानता है कि कैसी घटना आ पड़े।" मातबरसिंह ने उससे हँस कर कहा—"बेटा, डरो मत, मैं इस अवस्था में

भी अकेला पाँच सात आदमियों के लिये काफी हूँ।" यह कह कर वे कुलमनसिंह के साथ दर्बार की ओर चलते हुए।

थोड़ी देर में मातबर कुलमनसिंह के साथ राजमहल में पहुँचे और अपनी छड़ी टेक कर आंगन में खड़े हो गए और उन्होंने भीतर महारानी के पास अपने आने की खबर कहला भेजी। महाराज ने यह समाचार सुनते ही कि मातबरसिंह आ गए हैं और आंगन में खड़े हैं चट जंगबहादुर के हाथ में एक भरी हुई राइफल दे कर उन्हें अपनी बैठक के बाहर एक पर्दे की आड़ में दालान में बैठाल दिया। गगनसिंह जंग-बहादुर के पास कुहनी जोड़ कर वहीं पर्दे की आड़ में दालान में बैठ गए। महाराज दीवानखाने के एक कोने में पलंग पर बैठ गए और महारानी नीचे पायताने के पास फर्श पर बैठीं। जब वहाँ सब मामला ठीक हो गया तो महल से एक दासी नीचे आंगन में मातबरसिंह को बुलाने के लिये भेजी गई। दासी मुसकराती हुई सीढ़ी से नीचे आंगन में उतरी और उसने मातबरसिंह को ऊपर आने के लिये कहा। मातबरसिंह दासी के मुँह से बुलाने की खबर सुनते ही कोठे पर चले और कुलमनसिंह भी उनके पीछे पीछे किवाड़ों को बंद करता हुआ उनके साथ चला। मातबरसिंह ज्योंही महारानी के दीवान-खाने में घुसे कि जंगबहादुर ने ताक कर बंदूक दागी और मातबरसिंह के दो गोलियाँ, एक सिर में और दूसरी छाती में लगीं। गोलियों के लगते ही मातबर धड़ाम से गच पर

गिर पड़े और लोहू में लोटते हुए प्राणयातना की पीड़ा से तड़फड़ाने लगे।

थोड़ी देर में जब मातबरसिंह के शरीर से उनके प्राण पखेरू उड़ गए तब दुर्वलहृदय भीरु महाराज राजेंद्रबहादुर अपने आसन से उठे और गालियाँ देते उनके शव के पास आए और उनके मुँह पर लातें मारने लगे। उनका शव चाँदनी में लपेट कर महाराज की आज्ञा से खिड़की से नीचे फेँक दिया गया जिसे महाराज के आज्ञाकारी चौतुरियों ने ले जा कर पशुपति में जला दिया।

यह घटना १७ मई सन् १८४५ में हुई। एक दिन तक मातबरसिंह के खून का समाचार नितांत गुप्त रक्खा गया कि ऐसा न हो कि सेना के लोग वृद्ध अमात्य की मृत्यु के समाचार को सुन कर बिगड़ खड़े हों और एक दूसरी ही आपत्ति उपस्थित हो जाय।

दूसरे दिन १८ मई को जब महामात्य मातबरसिंह की मृत्यु की घटना का समाचार नगर में फैला तो लोगों का यह अनुमान हुआ कि महाराज ही ने इस घृणित काम को किया है। मातबरसिंह का बेटा रणोज्ज्वलसिंह अपने पिता की हत्या का समाचार सुन बहुत दुखी हुआ और रोता हुआ जंगबहादुर के पास आया और उसने उनकी सम्मति माँगी कि ऐसी अवस्था में जब दर्बार उसके विरुद्ध हो गया है और उसके बाप की हत्या कर डाली गई है, उसका क्या कर्तव्य है? जंगबहादुर

ने रणोज्ज्वलसिंह की बात सुन उससे कहा कि "ऐसी दशा में जब कि दर्बार थापा वर्ग के विरुद्ध हो रहा है और अभी आप के पिता का प्राण ले चुका है, मैं आप को यहाँ रहने के लिये कदापि सम्मति नहीं दे सकता हूँ। ऐसी अवस्था में यही उचित जान पड़ता है कि आपके जो कुछ हाथ लगे उसे ले कर आप चुपके से हिंदुस्तान की राह लीजिए और वहाँ जा कर अपने दिन काटिए। यहाँ इस समय नैपाल में रहने से आपको हानि छोड़ कुछ लाभ नहीं है, बल्कि उल्टे प्राण जाने का भी भय है। मुझ से जहाँ तक हो सकेगा मैं आपकी सहायता करने के लिये तैयार हूँ। आप घर जाइए और भागने की तैयारी कीजिए। मैं रणोद्दीपसिंह और बंबहादुर को आपके साथ कर दूँगा। वे आपको थानकोट पहुँचा देंगे और वहाँ से वे आप भी अपनी रक्षा के लिये समुचित प्रबंध करके चले आवेंगे और आप सुखपूर्वक नैपाली राज से निकल कर हिंदुस्तान की सीमा में पहुँच जाँयगे।"

रणोज्ज्वलसिंह जंगबहादुर की सलाह ले घर आए और अपने भागने की तैयारी करने लगे। थोड़ी देर में सब सामान ठीक कर वे चलने के लिये तैयार हो गए। जंगबहादुर ने अपने दोनों भाइयों को अपने प्रतिज्ञानुसार उनके साथ कर दिया और वे काठमांडव से हिंदुस्तान की ओर भागे। इधर तो जंगबहादुर ने रणोज्ज्वलसिंह को हिंदुस्तान की ओर रवाना किया उधर तुरंत एक आदमी त्रिविक्रमथापा के पास पालपा

भेजा और उन्हें लिख भेजा कि "थापा वंश पर बड़ी विपत्ति आ पड़ी है। मामा मातबरसिंह मार डाले गए। दर्बार विरुद्ध हो रहा है। रणोज्ज्वलसिंह यहाँ से प्राण लेकर हिंदुस्तान की ओर चले गए, आप भी जो कुछ हाथ लगे उसे ले कर हिंदुस्तान को भाग जाइए। संभव है कि आपके भी प्राण लेने का कोई षड्चक्र रचा जाय।" त्रिविक्रम थापा यह समाचार पाते ही उन्हें जो कुछ सर्कारी खजाने से धन हाथ लगा उसे और अपने प्राण ले कर भारतवर्ष की ओर भागे।

मातबर के मारे जाने के बाद तीन दिन तक कोट के चारों ओर रात दिन सैनिकों का पहरा रहा। महाराज और महारानी को भय था कि ऐसा न हो कि मातबर के मारे जाने का समाचार उसकी निज की सेना को मिले और वह कोट पर धावा कर दे। तीन दिन बाद जब चारों ओर शांति दिखाई पड़ी और सेना के बिगड़ने की आशंका जाती रही तो महाराज और महारानी ने सेना के लोगों को टाँडीखेल की परेट पर इकट्ठा होने की आज्ञा दी। यहाँ २१ मई को सारी सेना एकत्रित हुई और महाराज महारानी के साथ यहाँ पर आए और उन्होंने समस्त सैनिकों के सामने इस प्रकार की घोषणा की—" हमें अब तक प्रबंध का भार अमात्य पर छोड़ रखने से इस बात का अच्छी तरह अनुभव हो गया है कि अमात्य पर प्रबंध का भार छोड़ रखने से सब प्रकार की हानि ही हानि है अतः आज से हम राज्य के सारे प्रबंध के भार को अपने हाथ

में लेते हैं।" सैनिकों ने आज्ञा सुन कर झुक कर सलाम किया और महाराज और महारानी फौज की कवायद देख कर काठमांडव राजमहल को पलटे।

११—प्रबंध में नया उलट फेर।

सर्दार गगनसिंह ने मातबरसिंह का प्राण लेने के लिये यह सब षड्यंत्र रचा था। उन्हें आशा थी कि मातबरसिंह के मारे जाने पर मैं नैपाल का महामात्य बनूँगा और अपना अधिकार बढ़ाऊँगा पर उन्हें अमात्य पद पर नियुक्त होने का सौभाग्य प्राप्त न हो सका। महाराज राजेंद्रविक्रम सर्दार गगनसिंह के अधिकारों और शक्ति का बढ़ना अच्छा नहीं समझते थे। उनको भय था कि यदि गगनसिंह महामात्य पद पर नियुक्त हो जायगा तो वह मेरे और युवराज सुरेंद्रविक्रम के प्राण लेने का अवश्य प्रयत्न करेगा और येन केन प्रकारेण उन लोगों को मार कर रणेंद्रविक्रम को नैपाल के राजसिंहासन पर बैठा कर स्वयं शासन करेगा। इसके अतिरिक्त उसका महारानी के साथ प्रेम-संबंध भी महाराज से छिपा नहीं था और वे उसके प्राण के गाहक थे पर महारानी के डर से वे उसका बाल भी बाँका नहीं कर सकते थे।

महाराज राजेंद्रविक्रम अधिकार और शासन के तो अधिक लोलुप थे ही अतः वे किसी ऐसे पुरुष को अमात्य पद पर नियुक्त करना चाहते थे जो उनके वश में रह कर उनके जैसा करे। फतेहजंग चौतुरिया के अतिरिक्त ऐसा एक भी व्यक्ति नैपाल में नहीं था जो महाराज के मन के अनुकूल रह कर अमात्य के

काम को कर सकता, अतः महाराज ने उसे बुलाने के लिये हिंदुस्तान में आज्ञा भेजी और चौतुरियों और पांडे वर्ग के लोगों को, जिन्हें मातवर के आने पर देश-निकाले का दंड दिया गया था फिर नैपाल में आने के लिये आज्ञा दी और प्रतिज्ञा की कि यदि फतेहजंग नैपाल में आवेगा तो मैं उसे महामात्य के पद पर अवश्य नियुक्त करूँगा। उन्होंने कुछ आदमियों को नैपाल में त्रिविक्रम थापा को मार डालने के लिये भेजा, पर त्रिविक्रम थापा जंगबहादुर का सँदेसा पाते ही हिंदुस्तान को भाग गया था और उन आदमियों को विवश हो कर वहाँ से अकृतकार्य्य हो लौटना पड़ा।

महारानी की यह प्रबल इच्छा थी कि जिस प्रकार हो सके वे अपने प्रेमपात्र गगनसिंह को अमात्य पद पर नियुक्त करावें और उनकी सहायता से वे अपने पुत्र रणेंद्रविक्रम के लिये राजसिंहासन पर बैठने का मार्ग साफ करें। यद्यपि उन्होंने मातबरसिंह को महामात्य पद पर नियुक्त कराते समय यही सोचा था पर मातबर उनसे फूट कर युवराज की ओर चले गए थे और उनसे उन्हें अपने इस उद्देश में सहायता मिलने के स्थान पर उलटे विरोध करने की आशंका हो गई थी और यही कारण था कि वे उनके रक्त की प्यासी हो गईं थीं और अंत को उन्होंने उनका प्राण ही ले कर छोड़ा। अब गगनसिंह के अतिरिक्त कोई दूसरा व्यक्ति नहीं था जिससे वे अपने इस मनोरथ की सफलता में आशा करतीं अतः वे उनकी

प्रवल पक्षपातिनी थीं, पर संकोच-वश महाराज से उनके लिये अधिक अनुरोध और आग्रह नहीं कर सकती थीं कि ऐसा न हो कि महाराज को उनके प्रेम का, जिसे वे नितांत गुप्त समझती थीं आभास मिल जाय।

मातवरसिंह के मारे जाने से सब से अधिक क्षति युवराज सुरेंद्रविक्रम की हुई। अब उनका कोई सहायक नहीं रह गया जिस पर वे अपनी सहायता के लिये भरोसा करते। वे नितांत असहाय थे। महारानी उनके प्राण की गाहक थीं और वे यह कभी नहीं चाहती थीं कि युवराज महाराज राजेंद्रविक्रम के स्थान पर उनके उत्तराधिकारी हो सकें। महाराज यद्यपि उन्हें चाहते तो थे पर वे अपने जीते जी उन्हें अधिकार देना नहीं चाहते थे। अब उन्हें केवल थोड़ी सी जंगवहादुर से आशा थी जो उनको चुपके चुपके समय समय पर उन कुचक्रों से सजग कर दिया करते थे जो महारानी उनके ऊपर चलाया करती थीं, पर खुले साँट उनके पक्ष के पोषण करने में वे असमर्थ थे।

फतेहजंग भी हिंदुस्तान से नैपाल लौट कर पहुँच गए और यद्यपि महाराज ने उन्हें अमात्य का पद प्रदान करने के लिये बुलाया था, पर अकेले वे ही अमात्य पद के इच्छुक नहीं थे। गगनसिंह को तो आशा ही थी कि अब की बार मैं अवश्य अमात्य के पद पर नियुक्त हूँगा, पर अभिमान सिंह और जंगबहादुर भी अपने अपने मन में अमात्य पद के इच्छुक थे।

एक पद के लिये चार चार प्रचंड पुरुषों के इच्छुक होने से यह संभावना थी कि एक बार फिर अमात्य पद के लिये इन इच्छुकों में युद्ध छिड़ेगा। अतः बड़े वादविवाद के बाद यह निश्चय हुआ कि सर्दार गगनसिंह, फतेहजंग, अभिमानसिंह और जंगबहादुर चारों सैनिक जरनल के पद पर नियुक्त किए जांय। इनमें गगनसिंह सात रेजिमेंट के प्रधान सेनानायक और शेष तीनों तीन तीन रेजिमेंट के प्रधान सेनापति नियत किए गए और फतेहजंग को इस अधिकार के अतिरिक्त महामात्य का पद भी दिया गया। इस नियोग से उस समय सब को संतोष हो गया। जंगबहादुर और अभिमानसिंह के पद और वेतन की वृद्धि की गई और महाराज को यथेच्छ फतेहजंग ऐसा अमात्य मिल गया और महारानी गगनसिंह के जरनल हो जाने और अधिकार बढ़ जाने से शांत हुईं।

इसके दो महीने बाद गगनसिंह को महारानी की कृपा से सात रेजिमेंट सेना के आधिपत्य के सिवाय मेगजीन और सिलहखाने [शस्त्रागार] पर भी अधिकार मिल गया था। महाराज ने फतेहजंग को गुरखर, पालपा और दोती नामक तीन प्रांतों के देशिक और सैनिक प्रबंध के निरीक्षण का तथा वैदेशिक विभाग का भार सौंपा और अभिमान को पूर्वी तराई के प्रबंध का अधिकार दिया। दर्बार में पांडे लोगों के दल के दलभंजन पांडे नए सदस्य नियुक्त हुए। जंगबहादुर को प्रबंध में कोई अधिकार इस लिये न मिल सका कि दर्बार वा

राजवंश में कोई ऐसा प्रभावशाली व्यक्ति न था जो जंग-बहादुर का पृष्टपोषण करता। उन्हें ऐसे कठिन अधिकारमय समय में, जब कि पदों पर नियुक्ति योग्यता पर न हो कर केवल सिफारिश और पृष्टपोषक के आग्रह से हुआ करती थी स्वात्मावलंबन और अपने पुरुषार्थ से ही उन्नति के मार्ग में आगे बढ़ना था। महाराज ने जंगबहादुर को केवल सेना की शिक्षा को सुधारने और युवराज के स्वत्व की रक्षा करने का ही काम सिपुर्द किया और उनके भाई और संबंधियों को उनकी सेना में कप्तान, लफ्टेंट आदि पदों पर नियुक्त कर दिया जिसे जंगबहादुर ने अपनी अवस्था के अनुसार बहुत कुछ समझा।

१२—सर्दार गगनसिंह।

इस प्रबंध से सर्दार गगनसिंह सात रेजिमेंटों का जरनल तथा मेगजीन और शस्त्रागार का अधिपति बनाया गया। अब उसे दर्बार में बैठ कर अन्य सैनिक और दैशिक अधिनायकों की तरह सम्मति देने का अधिकार मिला। कहावत है एक तो वैसे ही बाघ और उसपर भी बंदूक बाँधे, फिर क्या कहना था! गगनसिंह का दिमाग अब आसमान को पहुँच गया। वह पहले से ही सब कुछ जो चाहता था महारानी की आड़ में करता था। महारानी उसके हत्थे चढ़ी थीं और उसके हाथ की कठपुतली थीं। वह उन्हें जिस तरह चाहता था नचाता था। पर अब वह अपने को महारानी का कारपर्दाज समझने लगा और जिस बात को करना चाहता वह खुल्लम खुल्ला, चाहे महारानी उसे जानती हों और उनकी सम्मति हो वा न हो यह कह कर वलपूर्वक कर डालता था कि महारानी की यह आज्ञा है। अब वह आगे से अधिक अपने गर्व में उन्मत्त हो गया था और किसी को अपने सामने कोई चीज नहीं समझने लगा।

महाराज को अब प्रबंध में कोई अधिकार न था और उनका होना न होने के बराबर था। फतेहजंग यद्यपि महामात्य तो थे पर वे नाम मात्र काठ के हाथी की तरह थे। सारे राज्य

का प्रबंध महारानी के दर्बार में अंतःपुर में होता था, जिसमें महारानी के बाद गगनसिंह का अधिकार सर्वोपरि था। महाराज के सारे अधिकार अब गगनसिंह के हाथ में पहुँच गए। वह अंतःपुर से ले कर राज्य के शासन और प्रबंध तक में जो चाहता था महाराज को दबा कर कर बैठता था, और किसी को कहाँ तक कहें महामात्य फतेहजंग भी उसमें चूँ तक नहीं कर सकते थे। उसने कई बार दबा कर फतेहजंग के प्रबंध को उलट डाला था जिससे महाराज से ले कर साधारण से साधारण दर्बार के सदस्य तक उससे नाराज थे, पर महारानी के भय से वे लोग कुछ गगनसिंह का कर नहीं सकते थे।

महारानी के साथ उसके प्रेम की बात अब छिपी न रही और महाराज से ले।कर साधारण से साधारण व्यक्ति तक जिसका दर्बार में गमनागमन था उससे परिचित थे और सब लोग उसके रक्त के प्यासे हो गए थे। वह रात रात महारानी के अंतःपुर में राज्य-प्रबंध के कार्य्य के मिस से घुसा बैठा रहता था। वह अपने इस आचरण के कारण इतना बदनाम हो गया था कि उसके मित्र भी जो उसके सामने उसकी हाँ में हाँ मिलाया करते थे उसके पीठ पीछे आपस में उसे गालियाँ दिया करते थे और यदि उनका वश चले तो उसे कच्चा खा जाने को तैयार थे।

उसकी और महारानी की प्रेम-कथा की चर्चा इतनी बढ़ गई कि महाराज राजेंद्रविक्रम जो अभी तक उसके इस

अनुपयुक्त संबंध को समय समय पर छिपाने की चेष्टा करते रहे थे अब उसे सहार नहीं सकते थे और इस ताक में लगे थे कि कोई ऐसा षड्यंत्र रचा जाय जिससे गगनसिंह के जीवन की इति श्री हो जाय।

एक दिन की बात है कि सितंबर के महीने की १२ तारीख को सन् १८४६ में रात के समय महाराज ने युवराज सुरेंद्रविक्रम और राजकुमार उपेंद्रविक्रम को बुला भेजा और उन्हें एकांत में ले जा कर कहा कि-"महारानी और गगनसिंह का परस्पर संबंध अच्छा नहीं है, इससे राजवंश के चाल चलन में धब्बा लग रहा है। इस बात को मैं अब तक तुम लोगों की ओर अपनी रक्षा के लिये छिपाता रहा हूँ पर अब मुझ में इसे छिपाने की शक्ति नहीं है। तुम देखते हो कि राज्य पर मेरा कुछ भी अधिकार नहीं है और सब कुछ महारानी के अधिकार में है। उसके चाल चलन से राजवंश पर कलंक का टीका लग रहा है। मैं अब यह बात तुम ही पर छोड़ता हूँ और मुझे आशा है कि तुम लोग शीघ्र गगनसिंह को मार कर कुल की मर्य्यादा की रक्षा करने का प्रबंध करोगे।"

दोनों राजकुमार अपनी विमाता के व्यभिचार का हाल अपने पिता के मुख से सुन क्रोध के मारे लाल हो गए और उन्होंने बहुत कुछ बलबला कर शपथ की कि "चाहे जो हो, हम गगनसिंह से अपनी विमाता के सतीत्व भ्रष्ट करने का बदला अवश्य चुकाएँगे।" राजकुमार उपेंद्र बिलकुल लड़का था

और वह फतेहजंग के घर में बिला रोक टोक के चला जाता था। महाराज ने उपेंद्र से कहा कि "तुम चुपके से फतेहजंग के घर जाओ और उसको इस प्रकार सारा समाचार सुना दो कि किसी को कानों कान खबर न हो"। युवराज उपेंद्र महाराज के आज्ञानुसार फतेहजंग के घर गया और उसने उनसे एकांत में सारा हाल जैसा था कह सुनाया। फतेहजंग यद्यपि इस बात से प्रसन्न हुए पर तौ भी वे धीर स्वभाव के थे और उन्होंने ऐसे गंभीर विषय में जिसमें बहुत कुछ आगा पीछा सोच विचार कर काम करना चाहिए उतावली से हड़बड़ी मचाना उचित नहीं समझा और राजकुमार को यह कह कर महाराज के पास महल में वापस किया कि मैं इस विषय में सोच विचार कर कल उचित प्रबंध करूँगा।

फतेहजंग ने सारा दिन इस विचार में बिता कर कि ऐसी अवस्था में क्या करना उचित है सायंकाल के समय अभिमान, दलभंजन पांडे और काजी ब्रजकिशोर को अपने पास बुलाया और उनसे महारानी और गगनसिंह के प्रेम का सारा समाचार कह सुनाया और पूछा कि अब गगनसिंह के मार डालने के विषय में कैसा षड्यंत्र रचना उचित होगा। महाराज की अव्यवस्थित चित्तता और क्षणभंगुर प्रकृति का हाल सब जानते थे, अतः सब लोगों को भय था कि ऐसा न हो कि महाराज का संकल्प बदल जाय और वे षड्चक्र के भेद को प्रकट कर सब का पता दे कर उनके

प्राणों को संकट में डालें। उन सब की यही एक मति हुई कि ऐसे काम को जहाँ तक शीघ्र हो कर ही डालना अच्छा होगा। इसके अतिरिक्त, उन्हें एक और भी भय था कि अस्थिर चित्त महाराज ने इस रहस्य को अपने ही तक नहीं रक्खा है बल्कि दोनों राजकुमारों तक को भी बतला दिया है जिनमें एक तो अनजान लड़का और दूसरा अव्यवस्थित चित्त है।

इन सब बातों पर विचार करते हुए उन लोगों ने स्वयं अलग रह कर किसी दूसरे आदमी के द्वारा गगनसिंह को मरवा डालने की ठान ली। काठमांडव में उस समय सब से बड़ा गुंडा एक ब्राह्मण था जिसका नाम लालझा था। इसके लिये किसी को मार डालना, पीट देना, किसी की नाक काट लेना इत्यादि बाएँ हाथ का खेल था। यह लालझा गगनसिंह के पड़ोस में रहता था और उसके घर की छत गगनसिंह के घर की छत से बिलकुल इतनी सटी हुई थी कि एक साधारण आदमी बड़े सुभीते से एक पर से उचक कर दूसरी पर जा सकता था। सब लोगों ने एक मत हो कर यही निश्चय किया कि यह काम लालझा से कुछ दे ले कर कराया जाय। उन लोगों ने लालझा को बुलवा भेजा। लालझा आया और बड़ी कहा सुनी से वह तीन हजार अशर्फी पर यह काम करने पर तैयार हुआ।

अब लालझा इस ताक में लगा कि कैसे और कहाँ उसे जरनल गगनसिंह के मारने का मौका मिले। इसका पता चलाने

के लिये वह स्त्री का भेष बदल और अपनी छत से उचक कर गगनसिंह की छत पर गया। फिर वह छत से उतर कर उनके घर में घुसा और चारों ओर घूम कर उसने यह निश्चय किया कि जब गगनसिंह अपनी पूजा की कोठरी में रात के दस बजे पूजा करने बैठे तो उस पर आघात किया जाय।

अब लालझा ने अपना सब प्रबंध कर लिया और १४ सितंबर की रात को ठीक उसी समय जब गगनसिंह अपनी कोठरी में बैठे पूजा कर रहे थे वह भरी हुई राइफल ले कर अपनी छत से कूद कर गगनसिंह की छत पर जा रहा। गगनसिंह पूजा में मग्न थे कि लालझा ने राइफल उठा कर ताक कर उनको गोली मारी। गोली भरपूर लगी और गगनसिंह गिर कर रक्त में लोटने लगे, क्षण भर में उनका काम तमाम हो गया। लालझा जिस मार्ग से आया था फुर्ती से उसी मार्ग से अपने घर पहुँचा और द्वार से निकल कर घोड़े पर, जिसका उसने पहले से ही प्रबंध कर रक्खा था, सवार हो काठमांडव से तराई की ओर भागा और अपनी जान बचा कर बेतिया चला गया।

१३—घोर घमासान और कोट में लोहू की नदी।

गगनसिंह मार डाले गए। उनकी मृत्यु का समाचार आग की तरह फैला। जरनल गगनसिंह का बेटा कप्तान वजीरसिंह दौड़ा हुआ महारानी के पास गया। महारानी यह समाचार पाते ही घबड़ा उठीं और तलवार लिए अपनी दासियों के साथ गगनसिंह के घर पर दौड़ी हुई आईं। गगनसिंह के शव को देख कर उन्होंने शपथ खा कर कहा कि "यदि मैंने गगनसिंह के खून का बिना बदला लिए छोड़ा तो मैं लक्ष्मीदेवी नहीं।" महारानी ने गगनसिंह की क्रिया के लिये एक लाख रुपया राजकीय निधि से देने की आज्ञा दी और कहा कि "गगनसिंह के शव को उचित आदर प्रदर्शित किया जाय।" उन्होंने गगनसिंह के परिवार को शांत्वना दी और समझाया और उनकी तीन विधवाओं से कहा कि तुम लोग सती न होना और उन्हें बहुत कुछ समझा बुझा ढाढ़स दे वे कोट में पलट आईं।

महारानी ने कोट में पहुँचते ही सेना की जाँच वा हाजिरी के लिये बिगुल फुकवा दी और समस्त सैनिक और देशिक नायकों को बुलाने के लिये आदमी दौड़ाए। जंगबहादुर रात को बिगुल का शब्द सुन और बुलाहट का सँदेस पा अपनी तीनों रेजिमेंट सेना, अपने भाइयों और संबंधियों को साथ

लिए हथियारबंद कोट में पहुँचे। उन्हें भय था कि लोग मुझे गगनसिंह का मित्र समझते हैं और ऐसी अवस्था में यह अधिक संभव है कि कहीं गगनसिंह के घातक मेरे प्राण पर भी वार कर बैठें और इसीलिये वे सजग हो अपनी सेना सजे हुए सब से पहले कोट में पहुँच गए। उन्होंने अपनी सेना को कोट को घेर लेने की आज्ञा दी और कह दिया कि "सब लोग सजग रहो और बिना मेरी स्पष्ट आज्ञा के किसी को भीतर से बाहर वा बाहर से भीतर आने जाने न दो। उनकी शिक्षित सेना बात की बात में कोट को घेर कर नियमपूर्वक यथास्थान व्यूह बाँध कर खड़ी हो गई और जंगबहादुर कोट में महारानी के पास गए।

महारानी जंगबहादुर की इस नीति को न समझ सकीं और घबड़ाईं क्योंकि उनका अभिप्राय केवल सैनिकों को बुलाने का था, न कि यह कि वे अपनी सेना ले कर आवें। महारानी ने जंगबहादुर को ससैन्य देख भयभीत हो कर कहा कि "हमने तुम्हें बुलाया था न कि तुम्हारी सेना को।" पर जंगबहादुर ने बात बना ली और कहा—"मैंने यह सजगता इसलिये की है कि मुझे विश्वास है कि गगनसिंह के घातक श्रीमती पर भी आक्रमण करेंगे। और मुझ पर तो होना कोई असंभव नहीं, क्योंकि यह सब लोग जानते हैं कि जंगबहादुर और गगनसिंह में बड़ी गाढ़ी मित्रता थी।" महारानी को उनका उत्तर मनोनीत जान पड़ा। पर साथ ही साथ महारानी को यह भी

आशंका हुई कि कहीं सब जरनल इसी तरह सेना ले कर आए तो लेने के देने पड़ेंगे और यहाँ ही घोर घमासान युद्ध मचेगा। यह सोच महारानी ने जंगबहादुर से कहा-"अभी चारों ओर आदमी दौड़ाओ कि वे उन सब सेनापतियों को जिन्होंने आने में देरी लगाई है वा जो अपनी सेना ले कर आ रहे हों बाँध कर अपने साथ लावें।" जंगबहादुर ने महारानी की आज्ञा पाते ही अपने दूसरे भाई बंबहादुर को जरनल फतेहजंग के लिये और औरों के लिये अन्य सर्दारों को भेज कर आज्ञा दी कि "जिसे जहाँ पाओ अपने साथ ले कर आओ।"

जरनल अभिमान कोट में पहुँच चुके थे पर वे कोट के चारों ओर सिपाहियों को देख यह समझ गए कि कुछ दाल में काला है और घोर घमासान मचने को है। इस भय से वे सीधे महाराज की बैठक में चले गए। उन्होंने यह सोचा कि यदि महाराज कोट में स्वयं पधारेंगे तो बहुत संभव है कि उन्हें देख कर उनके भय से लोग परस्पर युद्ध करने से रुक जाँय। सब सैनिक और देशिक सर्दारों का कोट में आना प्रारंभ हुआ और थोड़ी ही देर में कोट का आंगन सर्दारों से खचाखच भर गया और उनमें परस्पर हुमस चौरस होने लगी और ऐसे कारण आ उपस्थित हुए जिससे समीप था कि कोट का आंगन युद्ध क्षेत्र का रूप धारण कर रक्तप्लावित हो कि इसी बीच में महाराज, जरनल अभिमानसिंह और अन्य

चौतुरिया सर्दारों को साथ लिए कोट में पधारे। फतेहजंग अभी नहीं पहुँचे थे। जब सब लोग कोट में पहुँच गए तो महारानी ने काजी ब्रजकिशोर पांडे पर अपना संदेह प्रगट कर के कहा कि "और चाहे हो वा न हो, पर ब्रजकिशोर गगनसिंह के मारने की अभिसंधि में अवश्य सम्मिलित है क्योंकि उसे जरनल गगनसिंह के साथ बड़ी पुरानी कसक थी।" यह कह कर महारानी ने अभिमान को ब्रजकिशोर के पकड़ने की आज्ञा दी। अभिमान ने ब्रजकिशोर को बंदी कर लिया और महारानी ने ब्रजकिशोर को अपने सामने बुला कर उससे पूछ ताछ करनी शुरू की। पर ब्रजकिशोर ने साफ शब्दों में इनकार कर दिया और कहा "मैं इस मामले को जानता तक नहीं।" और वल-पूर्वक कहा कि "मैं इस मामले में नितांत निरपराधी हूँ।" इस पर महारानी ने यह विचार कर कि वह प्राणों के भय से अपने अपराध को स्वीकार कर लेगा, अभिमान से उसकी गर्दन मार देने के लिये कहा। अभिमान महारानी की इस आज्ञा को पा महाराज की ओर उनकी सम्मति के लिये ताकने लगा। महा-राज ने अभिमान को अपना मुँह तकते देख ऐसी चेष्टा बना कर मानों वे इस बात से बिलकुल अनभिज्ञ हैं यह स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि "जब ब्रजकिशोर अपने को अपराधी होना स्वीकार नहीं करता तो इसकी नियमानुसार जाँच होनी चाहिए और जब तक अदालत में उस पर मुकदमा चला कर यह निर्धारित न किया जाय कि वह दोषी है, मैं अपनी

स्वीकृति नहीं दे सकता।" जरनल अभिमान ने महारानी के पास जा कर कहा कि "ऐसे गूढ़ विषय में जब तक मैं महामात्य फतेहजंग से सम्मति न ले लूँ कुछ करना उचित नहीं समझता, जरनल फतेहजंग अभी कोट में आए नहीं हैं।"

अभिमान को महारानी के पास जाते हुए देख दुर्बल हृदय महाराज के पेट में खलबली मची कि कहीं ऐसा न हो कि ब्रजकिशोर और अभिमान परस्पर वादविवाद में सारा भंडा फोड़ दें और यह बात निकल आए कि इस षड्यंत्र के प्रधान नायक श्रीमान् ही हैं। वे कोट से इस मिस से खिसके कि "मैं स्वयं महामात्य को अब इस विचार के लिये साथ बुलाए लाता हूँ।" यह कह वे सीधे फतेहजंग के घर पर नरायणहेटी को चलते बने। यद्यपि जंगबहादुर अपने दूसरे भाई बंबहादुर को फतेहजंग के घर उन्हें बुलाने के लिये भेज चुके थे, पर उन्हें महाराज का ऐसे समय में अकेला इतनी दूर राजमहल के बाहर रात को जाना अच्छा न लगा और उन्होंने अपने तीसरे भाई बद्रीनरसिंह को महाराज के साथ यह कह कर भेजा कि तुम महाराज और मंत्री दोनों की गति को देखते रहना। महाराज वहाँ से भागे हुए नरायणहेटी में फतेहजंग के घर पहुँचे और वहाँ थोड़ी देर उनसे एकांत में बातें कर उन्होंने उन्हें कुछ आदमियों के साथ कोट में भेजा। पर इनके वहाँ भी पैर न जमे और वहाँ से वे यह कह कर कि मैं रेजिडेंट साहेब के पास उन्हें गगनसिंह का

मृत्यु की सूचना देने जाता हूँ, रेजिडेंसी की ओर रवाना हुए। रेजिडेंट साहब ने जो महाराज के स्वभाव और दर्बार की अवस्था से अच्छी तरह परिचित थे, रात को कोठो पर महाराज के आने की सूचना पा कर यह कहला भेजा कि इतनी रात को मिलना हमारे देश के आचार के विरुद्ध है। महाराज को वहाँ से भी निराश हो कर गाली बकते हुए नरायणहेटी पलटना पड़ा।

फतेहजंग के कोट में पहुँचने पर जंगबहादुर ने उनसे सारा समाचार कह सुनाया और कहा कि "यदि आप इसका प्रबंध नहीं करेंगे ता अभी यहाँ रक्त की धारा बहेगी। इसके बचने के दो ही ढंग हैं—या तो दुष्टा महारानी को बंदी कर लिया जाय अथवा जो वे कहें उसे आँख मूँद कर माना जाय और मैं दोनों अवस्थाओं में आपका साथ देने के लिये कटिबद्ध हूँ।"

फतेहजंग ने जंगबहादुर की सम्मति के साथ अपनी सहमति प्रगट की और कहा कि "उत्तम तो यह है कि महारानी को बंदी कर लिया जाय। पर महारानी को बंदी करना साधारण काम नहीं, इसमें सोच विचार कर हाथ लगाना चाहिए, उतावली और चटपटी करने से ऐसा न हो कि काम बिगड़ जाय और इसका उलटा भयानक परिणाम हो और हम लोगों को लेने की जगह देने पड़ें। रहा व्रजकिशोर का मामला, उसके विषय में मैं व्रजकिशोर की गर्दन मारने

की कभी सम्मति न दूँगा। उसका अदालत में विचार होना चाहिए और उसे अपनी सफाई करने के लिये यथोचित समय दिया जाना चाहिए।" पाठकों को ज्ञात है कि फतेहजंग का गगनसिंह के मारने के षड्यंत्र से स्वयं संबंध था और इसी लिये वे यह चाहते थे कि किसी प्रकार समय मिले ता वे षड्यंत्र के रहस्य के गोपन का उचित प्रबंध करें और तब तक महारानी भी शांति धारण कर लेंगी और राजी हो जाँयगी। इस तरह साँप भी मरेगा और लाठी भी बच जायगी।

जंगबहादुर फतेहजंग की इस नीति को समझ न सके। वे एक सीधे और वीर पुरुष थे। यद्यपि सालों उन्हें दर्बार की कूटनीति देखते बीत गए थे पर वे यह नहीं समझते थे कि फतेहजंग ऐसे सीधे पुरुष जिनसे वे इस प्रकार विशुद्ध भाव से अपने आंतरिक अभिप्राय प्रगट कर रहे हैं उनसे पर्दा डाल कर बातें कर रहे हैं। जब जंगबहादुर ने यह देखा कि महामात्य फतेहजंग उनकी सम्मति के अनुसार काम करने के लिये तैयार नहीं हैं और बगलें झाँक रहे हैं तो उन्होंने उनसे साफ साफ स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि "फतेहजंग! अब तक तो मैं ने महारानी को आफत मचाने से रोक रक्खा है और कुछ बिगड़ने नहीं पाया, पर अब उनका रोकना मेरे अधिकार के बाहर है।"

आंगन में भीड़ लगी थी। कोई किसी से झगड़ता था,

कोई किसी के कानों में कनफुस्कियाँ करता था, कोई कुछ कोई कुछ कर रहा था जिससे वहाँ तुमुल कोलाहल मच रहा था। महारानी कोठे पर एक खिड़की में बैठीं सब देख रही थीं। जब महारानी ने देखा कि आंगन में लोग हल्ला गुल्ला कर रहे हैं और कोई उनकी बात नहीं सुनता तो उन्होंने बड़े गंभीर भाव से सब को पुकार कर कहा कि—"मैं अभी गगनसिंह के मारनेवाले का पता चलाना चाहती हूँ, बतलाओ कि गगनसिंह का कौन घातक है?"

महारानी की यह बात सुन सब लोग चुप रहे, पर फतेहजंग ने बड़े विनीत भाव से कहा—"मैं श्रीमती के सामने प्रतिज्ञा करके कहता हूँ कि मैं गगनसिंह के घातक का पता चला दूँगा। पर श्रीमती क्षमापूर्वक शांति धारण करें। मामला पेचदार है और इसकी जाँच में कुछ समय लगेगा।"

महारानी का क्रोध फतेहजंग की इस बात को सुन और भी भड़का और वे आवेश में आ कर शपथ खा कर बोलीं कि "आज मैं सब लोगों को कोट से बाहर तभी जाने दूँगी जब या तो अपराधी गगनसिंह की हत्या को स्वीकार ही कर लेगा या उसके हत्यारे का पता ही चल जायगा।"

फतेहजंग महारानी की बात सुन कर चुप रहे और जब महारानी ने देखा कि वे भी अभिमान की तरह टाल मटूल कर रहे हैं और व्रजकिशोर के विषय में अपनी सम्मति

उनके अनुकूल नहीं देना चाहते तब तो उनका क्रोध और भी भड़का और आवेश में आ कर क्रुद्ध सिंहनी की तरह हाथ में नंगी तलवार लिए वे कोठे पर से नीचे उतरीं और बड़े वेग से व्रजकिशोर पर उसका सिर उड़ा देने के लिये स्वयं झपटीं जिसे देख जंगबहादुर से न रहा गया और वे फ़तेहजंग को साथ ले बीच में कूद पड़े और उन्होंने बीच बिचाव करके व्रजकिशोर को बचा लिया। महारानी भी इन दोनों जरनलों को बीच में पड़ते देख वहाँ से भागीं और सीढ़ी पर चढ़ कर फिर कोठे पर जहाँ से आई थीं भाग गईं।

इस घटना को हुए अभी थोड़ी देर हुई थी कि जंग-बहादुर को पता लगा कि अभी फ़तेहजंग और अभिमान आपस में कुछ कनफुस्कियाँ कर रहे थे और अभिमान की सेना के तीन सौ सैनिक कोट की ओर बढ़े चले आ रहे हैं। यह खबर पा जंगबहादुर ताड़ गए कि फतेहजंग और अभि-मान कुछ गुप्त अभिसंधि कर कुचक्र चलाया चाहते हैं और इसी लिये अभिमान ने अपनी सेना को यहाँ बुला भेजा है। वे आंगन से दौड़ते हुए महारानी के पास गए और बोले कि "श्रीमती के अनुचरों की हार हुआ चाहती है। अभिमान ने अपनी सेना को बुला भेजा है और वह बढ़ती हुई चली आ रही है।" महारानी ने यह सुनते ही आज्ञा दी कि "अभिमान को बंदी कर लो।" जंगबहादुर महारानी की यह आज्ञा ले कर जब आंगन में पहुँचे तो उन्हें पता चला कि

अभिमान वहाँ से फाटक की ओर अपनी सेना से मिलने के लिये चले गए और उनकी सेना कोट के बाहर पहुँच गई है। यहाँ फाटक पर युद्धवीर अधिकारी का पहरा था। युद्धवीर ने अभिमान को रोका और कहा कि "बाहर जाने और आने की मनाही है।" यह बात अभिमान को कोड़े सी लगी और उन्होंने कहा—"तुमको मेरे रोकने का क्या अधिकार है?" जिस पर युद्धवीर ने उत्तर दिया कि "महारानी ने जरनल जंगबहादुर के द्वारा यह आज्ञा दी है कि कोई भीतर से बाहर वा बाहर से भीतर बिना मेरी आज्ञा के जाने आने न पावे। अभिमान युद्धवीर के रोकने पर भी वलपूर्वक ठेल कर बाहर निकलना चाहते थे, पर युद्धवीर ने उन्हें फिर भी रोक कर कहा कि "भला इसी में है कि आप बाहर जाने की चेष्टा न करें, नहीं तो आप वलपूर्वक पकड़ कर रोके जाँयगे।" इस पर अभिमान लाल हो कर बोले कि "जंगबहादुर के पैर की जूती हो कर भला तुम्हारी क्या शक्ति है कि तुम मुझे रोक लोगे?" इस प्रकार अभिमान युद्धवीर से बाहर निकलने के लिये झगड़ रहे थे कि रणोद्दीपसिंह ने दौड़ कर जंगबहादुर से कहा कि अभिमान फाटक पर बाहर निकलने के लिये पहरू से झगड़ रहे हैं और मारपीट की नौबत पहुँचनी चाहती है। जंगबहादुर यह सुन दौड़ते हुए महारानी के पास गए और उन्होंने उनसे सारा हाल कह सुनाया। महारानी ने अभिमान को गोली मार देने की आज्ञा दी। बात की बात में गोली मार देने की आज्ञा फाटक पर पहुँच गई

और युद्धवीर ने जरनल जंगबहादुर की आज्ञा सुनते ही पास के एक सिपाही के हाथ से संगीन छीन कर और अभिमान की छाती में भोंक कर उसका काम वहीं तमाम कर दिया। अभिमान संगीन लगते ही पृथ्वी पर गिर पड़ा और अपनी छाती से बहते हुए रक्त में हाथ भर कर दीवाल पर थाप लगा कर यह जोर से चिल्ला कर बोला कि "जंगबहादुर ने गगनसिंह को मारा है !"

अभिमान का गिरना था कि चौतुरियों में मुँहा मुँही प्रारंभ हुई। जरनल फतेहजंग के बड़े बेटे खड्गविक्रम ने चौतुरिया लोगों को अपने पास बुला कर कहा–"भाइयो ! आप लोगों ने जरनल अभिमान की अंतिम बात तो सुन ही ली कि यह सब जाल ज़ंगबहादुर का रचा हुआ है, और अब यदि हम लोगों को मरना ही है तो हमें उचित है कि वीरों की तरह लड़ कर अपने प्राण दें।" खड्गविक्रम के मुँह से यह उत्तेजना की बात और जंगबहादुर की निंदा सुन कर जंगबहादुर के भाई कृष्ण-बहादुर से जो पास ही खड़े थे न रहा गया और क्रोध में आ कर वे बोल उठे–"झूठा चौतुरिया, अपना मुँह बंद कर! अभी बात उतनी नहीं बिगड़ी है। यदि इसी प्रकार वाही तवाही बकेगा तो अभी तेरी भी वही दशा होगी जो अभिमान की हुई है।" खड्गविक्रम कृष्णबहादुर की बात सुन कर आपे से बाहर हो गया और तलवार निकाल कर उनकी ओर झपटा। कृष्ण-बहादुर यद्यपि हथियारबंद थे पर वे यह नहीं जान सके

थे कि खड्गविक्रम उन पर इतनी बात पर आक्रमण कर देगा। उन्हें तलवार निकालने का अवकाश न मिला और न वे अपने को सम्हाल ही सके कि खड्गविक्रम ने उन पर वार चला दिया। वार हलका गया और इससे कृष्णबहादुर के दाहने हाथ का अँगूठा कट गया। बंबहादुर उनके पास ही खड़े थे पर उनकी तलवार म्यान से बँधी हुई थी और निकालने से निकल न सकी। जब उन्होंने देखा कि खड्गविक्रम अपना दूसरा वार चला कर कृष्णबहादुर का काम तमाम किया चाहता है तो बंबहादुर उसका हथियार छीनने के लिये उस पर दौड़े। वे हथियार तो नहीं छीन सके पर इस छीना झपटी में उनके सिर में हलका घाव लगा क्योंकि तलवार छत में अटक गई और पूरा काम न कर सकी। बंबहादुर फिर भी अपनी तलवार निकालने की व्यर्थ चेष्टा करने लगे, उनके बंधन में गाँठ पड़ गई थी और वह निकल न सकी और खड्गविक्रम ने फिर उन पर वार करने के लिये तलवार उठाई कि इसी बीच में धीरशमशेरजंग दौड़ कर उनकी सहायता के लिये पहुँच गए और उन्होंने एक ऐसा तुला हुआ हाथ खड्गविक्रम की कमर पर, उसके आघात करने के पहले ही जमाया कि वह दो टूक हो गया। खड्गविक्रम के काम को तमाम कर धीरशमशेर दर्बार में दौड़ा हुआ जंग-बहादुर के पास गया और उसने उनसे सारा समाचार कह सुनाया जिसे सुन कर जंगबहादुर को कुछ दुःख तो हुआ पर वह अमिट था, होनी थी सो हो चुकी थी।

जंगबहादुर यह सोच कर कि कहीं फतेहजंग अपने बेटे के मारे जाने का समाचार सुन यह न समझ ले कि मेरे भाइयों की ओर से छेड़ छाड़ हुई थी दौड़े हुए फतेहजंग के पास गए और बोले "आप दुःख न करें जो कुछ होना था सो हो गया। आप के लड़के ही ने पहले तलवार उठाई थी। धीरशमशेर अपने भाई पर आघात होते न देख सका, उसने भ्रातृस्नेह से प्रेरित हो उस पर वार चलाया है और यदि वह सहायता के लिये घटना स्थल पर न पहुँचता तो अधिक संभव था कि कृष्णबहादुर और बंबहादुर के प्राण जाते। मैं सदा से आपको अपना बड़ा और श्रेष्ठ मानता आया हूँ और सदा आपकी आज्ञा मानने पर कटिबद्ध रहा हूँ। अब भी आपकी आज्ञा मानने के लिये उसी प्रकार सन्नद्ध हूँ। ऐसी अवस्था में यह अत्यंत उचित है कि आप कृपा कर क्षमा कीजिए और बात को अधिक न बढ़ाइए।"

फतेहजंग ने जंगबहादुर की बातों का उत्तर तो नहीं दिया पर वे अपने मुँह से धीरे धीरे यह बड़बड़ाते हुए कि "जंगबहादुर ने ही गगनसिंह को मारा है" सीढ़ी पर महारानी के पास जाने के लिये दौड़े। जंगबहादुर भी यह कहते हुए कि "आप झूठ आरोप कर रहे हैं, मेरी बात सुनिए, मेरी बात सुनिए" उनके पीछे दौड़े। राह में दोनों, फतेहजंग और जंगबहादुर आपस में झगड़ने लगे और उन दोनों में प्रत्येक यही चाहता था कि पहले मैं महारानी के पास पहुँच

कर दूसरे की शिकायत करके महारानी को उसके विरुद्ध कर दूँ। फतेहजंग आगे थे और जंगबहादुर पीछे। राममिहर अधिकारी ने यह देख कि दर्बार की अवस्था संतोषजनक नहीं है जंगबहादुर से कहा कि "आप क्या कर रहे हैं? यदि यह बूढ़ा अमात्य महारानी तक पहुँच जायगा तो याद रखिए कि इसके सामने आपकी एक न चलेगी। आप सजग हो जाँय।" जंगबहादुर से इतना कह राममिहर ने एक सैनिक को जिस का नाम रामअलह था ललकार कर कहा कि "गजब हुआ चाहता है, खड़ा ताकता क्या है? गोली मार दे!" रामअलह राममिहर की यह बात सुन जंगबहादुर की ओर ताकने लगा। जंगबहादुर भौचक रह गए और हाँ या नहीं कुछ मुँह से न निकाल सके। रामअलह ने जंगबहादुर को चुप खड़ा देख उनकी भी सम्मति जान फतेहजंग को सीढ़ी पर ही गोली मार दी। गोली के लगते ही फतेहजंग अचेत हो कर गिर पड़े और लुढ़कते हुए सीढ़ी के नीचे धड़ाम से आ पड़े।

ठीक उसी समय जब इधर सीढ़ी पर जंगबहादुर और फतेहजंग में कहा सुनी हो रही थी आंगन के एक कोने में रणोदीपसिंह और गोप्रसाद में बात ही बात में तकरार हो पड़ी। बात बढ़ गई और परस्पर घूसमघूसा की नौबत पहुँच गई। रणोद्दीपसिंह हथियारबंद थे और गोप्रसाद खाली हाथ था, पर रणोद्दीपसिंह की तलवार म्यान से बँधी हुई थी और उसके बंधन में पेंच पड़ गया था और खुलता नहीं

था। गोप्रसाद इसकी तलवार पकड़े छीन रहा था और रणोद्वीप उसका बंद खोल रहे थे। इसी बीच में बंबहादुर और कृष्णबहादुर की दृष्टि रणोद्दीपसिंह पर पड़ी और उन्होंने देखा कि वे असहाय विवश हो रहे हैं। वे दोनों गोप्रसाद पर सिंह की नाईं टूट पड़े और उन्होंने उसे काट कर टूक टूक कर डाला।

गोप्रसाद का मारा जाना था कि सब चौतुरिया लोग अपने इष्ट मित्रों को ले कर गोलिया गए और फतेहजंग के भाई वीरबहादुरशाह को अपना मुखिया बना जंगबहादुर और उसके भाइयों पर आक्रमण करने के लिये उतारू हो गए। अब तो जंगबहादुर ने देखा कि घोर घमासान जिसे वे बचाना चाहते थे होने ही चाहता है। उन्होंने वीरोचित ढंग से अपनी तलवार निकाल कर गंभीर स्वर से चौतुरिया लोगों को पुकार कर कहा—"चौतुरिया भाइयो, जो कुछ होनी थी सो हो गई। ईश्वर की यही मर्जी थी और भाग्य का यह फल है। इसमें किसी का दोष नहीं। छेड़छाड़ तुम्हारी ही ओर से हुई थी। भाग्य की बात में किसी का कुछ वश नहीं है, वह अमिट है। कुशल इसी में है कि अब तुम लोग हथियार रख दो और मैं शपथ करता हूँ कि अब तुम्हारे ऊपर कोई हाथ नहीं उठाएगा और तुम्हारे प्राण छोड़ दिए जाँयगे।"

जंगबहादुर की यह बात सुन वीरबहादुर ने तमक कर कहा—

"मेरा भाई मरा पड़ा है। मेरे भतीजे की जान गई। भला कौन सी बात है जिससे हम लोग चुप रहें और शांति धारण करें। हम राजपूत हैं, जीते जी अपने हथियार नहीं रक्खेंगे।" यह कह कर वीरबहादुरशाह अपनी तलवार सोंत कर कृष्णबहादुर पर, जो थोड़ी दूर पर पड़ा अपने घाव से तड़फड़ा रहा था झपटा और चाहता था कि उस पर एक ही वार में उसका काम तमाम कर डाले कि बद्रीनरसिंह ने ताक कर उसके दहने हाथ में ऐसी गोली मारी कि उसकी तलवार हाथ से छूट कर अलग गिर पड़ी। बद्रीनरसिंह की गोली पूरी पड़ी थी और उसका हाथ छेद कर पार कर गई थी, पर उसने अपनी तलवार उठा ली और शेर की तरह बंबहादुर के ऊपर जो अलग घायल पड़ा था वह टूट पड़ा। उसका टूटना था कि वलवीर ने एक ऐसी गोली ताक कर उसकी छाती में मारी कि वीरबहादुर धम से पृथ्वी पर गिर पड़ा। पर वीर वीरबहादुर मरते दम भी, गहरा घाव लगने पर भी लड़खड़ाता हुआ बंबहादुर के पास तक पहुँच गया और वहीं तलवार पटक कर उसने अपने प्राण दिए जिससे बंबहादुर बाल बाल बच गया।

वीरबहादुर के गिरते ही चौतुरियों की क्रोधाग्नि और भी भड़क उठी और थापा और पांडे दल के लोग भी उनके साथ मिल गए और सब लोग घकोट कर भूखे भेड़ियों की तरह जंगबहादुर और उनके दल के लोगों पर टूट पड़े। फिर क्या था, घोर घमासान युद्ध होने लगा। जंगबहादुर स्वयं

तलवार निकाल कर आंगन में कूद पड़े और उन्होंने भाइयों और अनुयायी दल को ललकार कर आज्ञा दी कि "बिना विचारे आबाल वृद्ध को जो विरोधी दल का मिले काटना प्रारंभ कर दो।" थोड़ी देर तक घोर घमासान मचा रहा और सैकड़ों योधा दोनों दल के हताहत हुए। इसी बीच में जंगबहादुर की वह सेना जो फाटक के बाहर जमी खड़ी थी जंगबहादुर की सहायता के लिये भीतर घुसी और चौतुरियों और उनके सहायकों को काट काट कर खलिहान करने लगी। अब तो चौतुरियों के अवसान जाते रहे और हथियार फेंक फेंक सब लोग इतस्ततः भागने लगे। कोई दीवालों, कोई छत पर चढ़ कर कूद कोट के बाहर निकला, कोई मोरियों और संडासों की राह घुस कर भागा, कुछ लोग हथियार फेंक रक्तपोत मुर्दा बन शवों के ढेर में जा छिपे। भागते हुए तीन चार विसनैतों और कुछ थापा लोगों ने महारानी के ऊपर भी ढेला फेंका, पर भाग्यवश महारानी ने अपनी खिड़की के किवाड़ बंद कर लिए थे और उन्हें कोई चोट नहीं आई। चौतुरिये भाग निकले और मैदान जंगबहादुर के हाथ लगा।

कोट के आंगन में लोथों का खलिहान लगा हुआ था, रक्त का नदी बह रही थी और कोट में भयानक युद्ध क्षेत्र का दृश्य उपस्थित था। महारानी ने जंगबहादुर की यह वीरता और आत्मसमर्पण देख उन्हें नैपाल के प्रधान सेनाधिपति और महामात्य के पद पर नियुक्त करके आज्ञा दी कि वे

युवराज सुरेंद्रविक्रम को इस घटनास्थल पर ला कर कोट का भयानक दृश्य दिखा दें। युवराज को यह घटना स्थल दिखलाने से महारानी की यह आंतरिक इच्छा थी कि युवराज के ऊपर इसका प्रभाव पड़ेगा और वह डर कर अपने पिता महाराज राजेंद्रविक्रम के साथ, जो काशी में तीर्थयात्रा के लिये जाने-वाले हैं नैपाल से चला जायगा तो महारानी अपनी इस नई और बहादुर मंडली की सहायता से उनकी अनुपस्थिति में अपने पुत्र रणेंद्रविक्रम को नैपाल के राजसिंहासन पर बड़ी सुगमता से अभिषिक्त करा सकेंगी। बुद्धिमान् जंगबहादुर महारानी के अभिप्राय को ताड़ गए और फौरन उसी दम युवराज को लेने के लिये प्रस्थानित हुए और बात की बात में युवराज को लिए घटना स्थल पर आ उपस्थित हुए। राह में जंगबहादुर ने चुपके से युवराज के कानों में कह दिया कि "आप चिंता न करें। आप के सब विरोधियों का नाश हो गया और अब आप पर कोई अँगुली नहीं उठा सकता।" जंगबहादुर ने युवराज को कोट के आंगन में पड़ी हुई लोथों के ढेर को दिखा कर उन्हें अपने एक भाई के साथ उनके स्थान पर भेज दिया। तब महारानी ने आज्ञा दी कि आंगन में पड़ी हुई लोथें उनके संबंधियों को यदि वे उन्हें ले कर दाह कर्म करना चाहें तो दे दी जाँय।

आधी रात से अधिक रात बीत चुकी थी, जो कुछ होना था सो हो गया। जरनल फतेहजंग और अभिमान कोट के

आंगन में अपने साथियों और सहायकों को अपने साथ ले कर सदा के लिये ऐसे सोए कि अब वे न जागेंगे। सारा नैपाल अब कोई ऐसा वीर पुरुष उत्पन्न न करेगा जो तलवार उठा कर वीर पुंगव जंगबहादुर का सामना कर सके। अब उस भयानक स्थल में तलवारों की खटखटाहट और घायलों के चिल्लाने का शब्द नहीं सुनाई पड़ता। चारों ओर शांति का साम्राज्य है। जंगबहादुर का भाग्य उदय हुआ। महारानी ने उन्हें नैपाल के महामात्य का पद प्रदान किया और अब उनके वे दिन आए कि जरनल जंगबहादुर से वे नैपाल के कर्ता हर्ता क्या वहाँ के सर्वस्व बन गए।

१४—महामात्य जंगबहादुर ।

कोट की घटना जिससे जंगबहादुर के भाग्य का उदय हुआ १५ सितंबर १८४६ की रात को संघटित हुई थी। उसी समय महारानी ने जंगबहादुर को महामात्य का पद प्रदान किया था। प्रातःकाल जब सूर्य्योदय हुआ तो जंगबहादुर ने महारानी से प्रार्थना की कि "आप कृपया हनुमानढोका को पधारिए और मेरी नजर स्वीकार कीजिए।" महारानी ने जंगबहादुर की प्रार्थना स्वीकार की और बड़े धूमधाम से वे हनुमानढोका पहुँची। यहाँ जंगबहादुर ने २० मोहरें महारानी के सामने नजर पेश कीं जिन्हें श्रीमती ने हर्षपूर्वक स्वीकार करके जंगबहादुर को खिलत प्रदान की।

जंगबहादुर ने महामात्य पद पर नियुक्त होने और अपनी सेना की स्वामिभक्ति के उपलक्ष में उसके प्रत्येक व्यक्ति को यथायोग्य पुरस्कार प्रदान किया और वे हनुमानढोका से महामात्य का मुकुट अपने शिर पर दिए संरक्षक दल के साथ महाराज राजेंद्रविक्रम के पास मुजरे के लिये आए। महाराज ने इनको महामात्य के मुकुट से सुशोभित देख क्रोध में आ कर पूछा कि "इतने राज्य के प्रधान और नायकों का रक्तोत्प्लावन किस की आज्ञा से हुआ है ?" इसका उत्तर जंगबहादुर ने बड़ी गंभीरता से निर्भयतापूर्वक इस प्रकार दिया कि "जो कुछ

हुआ है वह श्रीमती महारानी लक्ष्मीदेवी के आज्ञानुसार ही हुआ है जिनको श्रीमान् राज का समस्त अधिकार प्रदान कर चुके हैं और जिनके अनुसार उक्त श्रीमती जनवरी सन् १८४३ से आपके प्रदत्त समस्त अधिकारों को काम में ला रही हैं।"

महाराज राजेंद्रविक्रम दुर्बल हृदय तो थे ही, जंगबहादुर के उत्तर को सुन कर क्रोध से खीखिया कर महारानी के अंतःपुर में पहुँचे। महारानी यहाँ गगनसिंह के मारे जाने से उसके वियोग में कातर हो उदास बैठी थीं। महाराज राजेंद्र-विक्रम महारानी के पास गए और क्रोध के आवेश में आ उन से भी वही प्रश्न करने लगे। महारानी भी महाराज के इस प्रश्न को सुन झुँझला उठीं और चिढ़ कर बोलीं कि "अभी क्या हुआ है? इतने ही में आप ऊब गए। अभी ऐसा घमासान मचेगा कि उसे देख आप कोट के घमासान को भूल जाँयगे। यदि आप रणेंद्रविक्रम को राजसिंहासन देने से इनकार करेंगे तो रक्त की नदी बह जायगी।" इस प्रकार लड़ झगड़ कर महाराज राजेंद्रविक्रम महल से बाहर निकले और अपनी रक्षा के लिये काशी की यात्रा के मिस से काठमांडव से भाग कर पाटन चले गए।

तीसरे दिन १८ सितंबर को सब सेना और सेनापति दून* में परेट करने के लिये बुलाए गए और महारानी ने समस्त

* दो पहाड़ों के बीच की भूमि।

सेना और सेनापतियों के सामने जरनल जंगबहादुर के महामात्य और प्रधान सेनाधिपति के संयुक्त पद पर नियुक्त होने की घोषणा की जिसे सुन सब छोटे बड़े सैनिकों ने अपनी प्रसन्नता प्रकट की और सब लोग हर्ष से जयध्वनि करने लगे। इसी दिन सायंकाल के समय महारानी ने आज्ञा दी कि ऐसे प्रधान और नायकों की जायदाद जो कोट के घमासान युद्ध में मारे गए हैं वा वहाँ से भाग गए हैं जब्त कर ली जाय और उनके कुटुंबियों को देश से निकाल दिया जाय। इसके लिये एक तिथि नियत करके घोषणा कर दी गई कि सब लोग जिन्हें देशनिकाला दिया गया है उस तिथि के पूर्व ही नैपाल छोड़ कर हिंदुस्तान में भाग जाँय और यदि कोई ऐसा पुरुष उस तिथि को वा उसके बाद नैपाल राज्य की सीमा के भीतर देखा जायगा तो उसे प्राणदंड दिया जायगा।

जिस दिन कोट में घमासान युद्ध हुआ था उस दिन से बराबर आठ दिन तक राजमहल के चारों ओर सेना रक्खी गई थी और सैनिकों को कठिन आज्ञा दी गई थी कि वे अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित रहें, न जानें किस समय उनका काम आ पड़े। ऐसी अवस्था में जब तक कि विरोधियों के लिये उचित प्रबंध न कर दिया जाय उनकी ओर से विप्लव मचने की घोर आशंका थी और इसीलिये राजधानी और विशेष कर राजमहल की रक्षा के लिये यह उचित था कि सेना उनके आक्रमण रोकने के लिये हर दम सुसज्जित रक्खी जाय।

आठ दिन बीत गए, विप्लवकारी चैातुरियों, पांडे और थापाओं को संपत्ति-हरण और देशनिष्काशन का दंड दिया जा चुका और राजधानी में शांति स्थापित हो गई। अब जंगबहादुर ने सेना को अपने अपने स्थान पर वापस जाने की आज्ञा दी और वे स्वयं अमात्योचित राज्य के प्रबंध में निरत हुए।

इसी बीच में पनजन्नी पड़ी। नैपाल में पनजन्नी के दिन महाराज से ले कर साधारण किसान तक अपना वार्षिक प्रबंध करते हैं। इस दिन सब लोग अपने अपने नौकरों को कुछ न कुछ पारितोषिक आदि देते हैं और उनको फिर साल भर के लिये नियत करते हैं। यह त्योहार दुर्गापूजा के पहले कुआर महीने के कृष्णपक्ष में पड़ता है। जंगबहादुर ने इस दिन उन सब सैनिकों के, जिन्होंने कोट के युद्ध में स्वार्थत्याग-पूर्वक उनकी सहायता की थी, वेतन और पद की वृद्धि की और अपने सगे और चचेरे भाइयों को कर्नल का पद प्रदान किया जिसे महारानी ने सहर्ष स्वीकार कर लिया।

जंगबहादुर ने अमात्य पद पर नियत होने की अवस्था में युवराज सुरेंद्रविक्रम को भुला नहीं दिया और यद्यपि वे सब कुछ महारानी के आदेशानुसार ही करते थे पर वे हृदय से युवराज के हितचिंतक थे। इसलिये यह सोच कर कि ऐसा न हो कि महारानी युवराज के ऊपर कोई कुचक्र चला बैठें और उसके जीवन पर आक्रमण करने की चेष्टा करें उन्होंने अमात्य पद पर नियुक्त होते ही युवराज

सुरेंद्रविक्रम और उनके भाई राजकुमार उपेंद्रविक्रम दोनों को बंदीगृह में डाल दिया। दोनों राजकुमार कोट के भीतर ही एक घर में कारागार में रक्खे गए और उनके ऊपर जंगबहादुर ने अपने दो भाइयों बंबहादुर और जगत्‌शमशेरजंग का कड़ा पहरा बैठाल दिया और ताकीद कर दी कि "खबरदार! सिवाय दो चार इने गिने विश्वासपात्र नौकर चाकरों के सब लोगों का गमनागम बंद कर दिया जावे और उनको सिवाय उनके रसोइयाँ के किसी के हाथ का पकाया भोजन भूल कर के भी न दिया जाय।" इसे देख महारानी भी प्रसन्न हुईं क्योंकि वे चाहती थीं कि युवराज को जितना ही दुःख दिया जाय अच्छा है।

लिखा जा चुका है कि महाराज राजेंद्रविक्रम महारानी से लड़ झगड़ कर काशी जाने के मिस से काठमांडव से निकल कर ललितापट्टन को चले गए थे, महाराज ने चलते समय अपने साथ के लिये सर्दार भवानीसिंह को जिनका उन्हें अधिक विश्वास था ले लिया था। महारानी ने महाराज के प्रस्थान करने पर करबीर खत्री को महाराज की गति पर ध्यान रखने और उसकी सूचना देते रहने के लिये उनके साथ भेजा। टाँडीखेल के पड़ाव में महाराज और भवानीसिंह ने एकांत में कुछ मंत्रणा की और इसकी सूचना करबीर खत्री ने लिख कर महारानी को भेजी। महारानी ने सूचना पाते ही जंगबहादुर को बुलवा भेजा और आज्ञा दी कि अभी एक

सूबेदार को एक कंपिनी सैनिक दल के साथ पाटन की ओर भेजो कि वह पहुँचते ही जिस प्रकार हो भवानीसिंह को काट डाले। जंगबहादुर ने तुरंत एक सूबेदार को भवानीसिंह के मारने के लिये महारानी की लालमुहर युक्त आज्ञापत्र देकर पाटन को सेना के साथ भेजा। सूबेदार महाराज को बागमती के पुल पर मिला। सर्दार भवानीसिंह महाराज के पीछे पीछे हाथी पर चढ़े चले जा रहे थे। सूबेदार ने भवानीसिंह को रोक कर उन्हें महारानी का आज्ञापत्र दिखला कर उन्हें हाथी पर से उतरने को कहा। भवानीसिंह हाथी पर से उतरे नहीं। इस पर सूबेदार ने भवानीसिंह पर गोली चला दी और भवानीसिंह हाथी से लड़खड़ाता हुआ मुर्दा हो कर पृथ्वी पर गिर पड़ा। उसके गिरते ही सूबेदार ने भवानीसिंह का सिर काट लिया और उसे ले कर महारानी के पास वापस आ उसने महारानी के सामने रख दिया।

जंगबहादुर को इस घटना से भय उत्पन्न हुआ कि एक तो महाराज उसकी नियुक्ति के योंही विरुद्ध थे और इसी लिये महारानी से लड़ कर और रूठ कर पाटन भागे थे, दूसरे महारानी ने उनके विश्वासपात्र सेवक सर्दार भवानीसिंह को मरवा डाला। ऐसी अवस्था में यदि महाराज पाटन पहुँच गए तो अधिक संभव है कि वह पाटन की सेना को उसका कर उनके विरुद्ध कर दें और फिर विप्लव मचे। यह सोच कर जंगबहादुर ने अपने भाई रणोद्दीपसिंह को महाराज के

फेरने के लिये पाटन की ओर भेजा और रणोद्दीपसिंह बड़ी कठिनाई से समझा बुझा महाराज को पाटन से काठमांडव फेर लाया।

———

१५—महारानी से खटपट और बंदरखेल का षड्यंत्र

देवीबहादुर की गर्दन मारी जाने से जंगबहादुर सभा-चतुर हो गए और वे अपने भावों को छिपना भी जान गए थ। इसी से यद्यपि वे अंतष्करण में अपने पुराने स्वामी युवराज सुरेंद्रविक्रम के भक्त और हितचिंतक थे पर इस बात को महारानी और गगनसिंह ने लख नहीं पाया। वास्तव में राजनैतिक कामों के लिये, विशेष कर जब देश में चारों ओर कूट नीति की भरमार हो, मनुष्य के लिये दुहरा जीवन जिसे वाह्य (Public) और निजू (Private) कहते हैं रखने की बड़ी आवश्यकता है। इसके बिना चतुर मनुष्य का काम नहीं चल सकता।

एक समय की बात है कि जब जंगबहादुर को जरनल पद प्रदान हुआ था तब महारानी ने गगनसिंह की उपस्थिति में जंगबहादुर से कहा था कि "यह मेरे प्रसाद के प्रभाव का फल है कि तुम जरनल पद पर नियत हुए हो। मैं तुम्हें सब से बहादुर समझती हूँ और मुझे तुम से इस बात की पूरी आशा है कि तुम मुझे देश की अवस्था सुधारने में सहायता प्रदान करोगे।" महारानी की यह बात सुन जंगबहादुर ने

तुरंत यह उत्तर दिया था–"मैं श्रीमती की छाया में इतना बड़ा हुआ हूँ, मैं उन कृपाओं को जो श्रीमती मुझ पर करती आई हैं कदापि न भूलू गा। मैं सदा श्रीमती की आज्ञाओं को पालन करने के लिये उद्यत हूँ।" जंगबहादुर की यह बात सुन गगनसिंह ने कहा कि–"मैं और जंगबहादुर श्रीमती के खास अनुचर हैं और यह श्रीमती की अनुग्रह है कि हम लोग इस पद पर पहुँचे हैं।"

इस प्रकार की बातों से जंगबहादुर समय समय पर महारानी पर प्रभाव डालते रहे थे, उनको जंगबहादुर पर पूरा भरोसा था कि वह अवसर पड़ने पर उनको उचित सहायता प्रदान करेंगे और उनके पुत्र रणेंद्रविक्रम को नैपाल के सिंहासन पर बैठाने के उद्योग में उनके सहायक होंगे। महारानी भी यथासमय गगनसिंह के जीवनकाल ही में जंगबहादुर से कई बार युवराज सुरेंद्रविक्रम के अत्याचारों का उलहना दे चुकी थीं और उसकी उद्धत्ता की शिकायत कर चुकी थीं। उन को यह दृढ़ विश्वास था कि बिना वीर जंगबहादुर की सहायता के न तो वही कुछ कर सकेंगी और न उनका प्रेमपात्र गगनसिंह ही कुछ कर सकेगा और इसीलिये वह सदा किसी न किसी प्रकार जंगबहादुर को अपनी ओर मिलाए रहने की चेष्टा करती रहीं।

गगनसिंह के मारे जाने पर और कोट में महासंहार के बाद तो जंगबहादुर ही उनके सर्वस्व हो गए थे। उन चार

जरनलों में जिनकी नियुक्ति जरनल मातबरसिंह के मारे जाने के बाद हुई थी तीन मारे जा चुके थे और नियमानुसार भी जंगबहादुर के अतिरिक्त और कोई व्यक्ति शेष नहीं रह गया था जिसकी नियुक्ति महामात्य के पद पर हो सकती। जंगबहादुर को महामात्य पद पर नियुक्त करने में महारानी ने यह सोचा था कि जंगबहादुर वीर है, मनचला है, दबंग है, प्रबंध-कुशल है तथा हमारा भक्त और शुभचिंतक है। इसके महामात्य पद पर नियुक्त होने से हमारी शक्ति द्विगुण त्रिगुण हो जायगी और इसकी सहायता से सुगमतापूर्वक हम अपने पुत्र रणेंद्रविक्रम को राजसिंहासन पर बैठा सकेंगी।

जंगबहादुर ने सब से बड़ी बुद्धिमानी का काम यह किया था कि महामात्य पद पर नियुक्त होते ही युवराज को उसके सहोदर भाई उपेंद्र के साथ कारागार में डाल दिया और उस पर कड़ी आँख रखने के लिये अपने भाइयों को नियत कर दिया। इससे महारानी का और भी जंगबहादुर पर विश्वास बढ़ गया। महारानी को इससे यह निश्चय हो गया कि अब युवराज उसके पंजे में फँस गया है और वे जब और जिस प्रकार चाहेंगी जंगबहादुर के द्वारा उसका काम तमाम कर डालगी, फिर उनके पुत्र रणेंद्रविक्रम के लिये राजगद्दी पर बैठना सुगम हो जायगा। इसी लोभ से वे जंगबहादुर के प्रबंध को बिना कुछ जीभ हिलाए स्वीकार करती रहीं और उन्होंने इनके प्रत्येक कार्य्य का समर्थन किया।

जंगबहादुर ने जब तक अपना अधिकार अच्छी तरह नहीं जमा लिया, चुपचाप अपने आंतरिक भावों को छिपाए रक्खा और महारानी के मुँह पर वे उनके ऐसी कहते रहे। इस बीच में कई बार महारानी ने गुप्त रीति से युवराज और उसके भाई को मार डालने के लिये जंगबहादुर से इशारा किया जिसे जंगबहादुर समझते हुए भी अज्ञात हो चुप रहे। तब महारानी को स्पष्ट रूप से साफ़ साफ़ कहना पड़ा कि जंगबहादुर युवराज को कारागार ही में मार डालो। इसे जंगबहादुर यह कह के टाल गए कि अभी मौका नहीं है फिर देखा जायगा। इसके बाद ही महारानी जंगबहादुर के सिर हो गईं और वारबार युवराज को मारडालने के लिये तगादे पर तगादा करने लगीं जिसे जंगबहादुर कभी यह कह के कि अभी अच्छे मुहूर्त नहीं हैं, कभी कुछ कभी कुछ कह कर टालते गए। अंत में महारानी ने इस टालमटूल से तंग आ कर इन्हें एक पत्र लिखा जिसमें उन्होंने बड़ी बड़ी आपत्तियों द्वारा अपना अधिकार प्रदर्शित करते हुए जंगबहादुर को लिखा कि तुम युवराज और राजकुमार दोनों को मार डालो और ऐसा करने के लिये उन पर दबाव भी डाला। यह पत्र महारानी ने ३१ अक्तूबर को अपनी एक विश्वासपात्र दासी के हाथ बंद लिफाफे में जंगबहादुर के पास भेजा।

जंगबहादुर को अमात्य पद पर नियुक्त हुए डेढ़ मास बीत चुका था और इस अंतर में इन्होंने आंतरिक (Civil) प्रबंध

और सेना पर अपना पूरा अधिकार जमा लिया। अब यह निःशंक हो कर अपने भावों को खुल्लमखुल्ला प्रगट करने योग्य हो गए थे। महारानी का जिससे कि महाराज राजेंद्रविक्रम तक बेंत की तरह काँपते थे, इनको अब तनिक भर भी भय न था। उनके पत्र को पाकर जंगबहादुर ने पत्र को तो अपने पास रख लिया और उसके उत्तर में महारानी को यह उत्तर लिख भेजा—

"श्रीमती का पत्र मुझे मिला। इसमें श्रीमती ने मुझ पर एक ऐसे काम के करने का भार डाला है जिसे मैं एक दारुण पातक समझता हूँ। मेरा यह कर्तव्य है कि मैं श्रीमती को दृढ़तापूर्वक सूचना दे दूँ कि यह काम नितांत अनुचित है क्योंकि ज्येष्ठ पुत्र की उपस्थिति में छोटे को गद्दी पर बैठाना सब प्रथाओं के विरुद्ध है। यह काम लोक और धर्म दोनों के विरुद्ध है। इसका करना एक दारुण वा घोर पातक है जो आत्मा और धर्म दोनों को कलुषित करनेवाला है। अतः मैं शोक के साथ कहता हूँ कि मैं इस विषय में श्रमती के आज्ञापालन करने में असमर्थ हूँ। श्रीमती राजप्रतिनिधि हैं। मेरा श्रीमती के अतिरिक्त देश वा राज्य के प्रति भी कुछ कर्तव्य है जो इतना प्रवल है कि उसके सामने किसी प्रकार के व्यक्तिगत विचार से काम नहीं किया जा सकता। मैं अपने उस कर्तव्य से, जो राज्य के प्रति है वाधित हूँ कि श्रीमती को सूचित करूँ कि यदि श्रीमती फिर कभी मुझे ऐसा

आज्ञा देंगी तो देश के आईन (विधि) के अनुसार श्रीमती को हत्या करने की चेष्टा करने के लिये दंड दिया जायगा।"

इस उत्तर के पाते ही महारानी लक्ष्मीदेवी को जंगबहादुर के वास्तविक रूप का पता चल गया। इनका सारा विश्वास जाता रहा और उन्हें अपनी भूल मालूम हो गई। वे मारे क्रोध के लाल हो गईं और उनकी सारी आशा-लता जिसे वे अपने अंतष्करण के आलबाल में अब तक सींच रही थीं कुम्हला गई। उन्हें जंगबहादुर से अपने काम में सहायता मिलने की जगह उनसे नैराश्य ही नहीं हुआ किंतु वे उन्हें अपना प्रबल प्रचंड विरोधी समझने लगीं। वे अपने किए हुए पर पछताने लगीं और उनके प्राण की गाहक हो गईं। भला यह कब संभव था कि महारानी लक्ष्मीदेवी ऐसी चालबाज स्त्री जिसने बात की बात में मातबरसिंह जैसे बुड्ढे और अनुभवी अमात्य के प्राण के लिये फतेहजंग को बाल बराबर नहीं गिना, इस नवयुवक नए अमात्य को जिसे अभी नियत हुए डेढ़ महीने से अधिक न हुए थे अछूता छोड़ देतीं और अपनी आशा को त्याग 'हरेरिच्छा बलीयसी' मान कर संतोष कर बैठतीं। ऐसा करना उनके स्वभाव के विरुद्ध था। उन्होंने अपने इस अपमान को हृदय में अंकित कर लिया और वे जंगबहादुर के मारने के लिये षड्यंत्र रचने में प्रवृत्त हुईं।

इस काम के लिये महारानी ने वीरध्वज नामक एक बसनैत

को अपना विश्वासपात्र बनाया और उससे यह निश्चय किया कि यदि वह जंगबहादुर को मार डाले तो वे उसे जंगबहादुर के स्थान पर नैपाल का महामात्य बनावेंगी। वीरध्वज ने ये बातें स्वीकार कीं और महारानी को एक मुहर नजर दी। पर महारानी को उसकी बातों पर विश्वास न आया और उन्होंने उसे इस बात के लिये शपथ करने को वाधित किया। वीरध्वज शपथ करने के लिये उद्यत हो गया और बोला कि जहाँ आप कहें मैं शपथ करने के लिये तैयार रहूँ। इस शपथ के लिये गुप्त रीति से बँदरखेल का स्थान नियत किया गया।

महारानी वीरध्वज से शपथ लेने के लिये काठमांडव से बँदरखेल को आईं और वहाँ उन्होंने वाग में एकांत में वीरध्वज को अपने पास बुला भेजा। वीरध्वज वाग में महारानी के पास गया। वहाँ महारानी ने ताम्रखंड, तुलसीपत्र और हरिवंश की पोथी शपथ खाने के लिये मँगवाई और वीरध्वज ने इन सब को अपने सिर पर उठा कर शपथ की कि "मैं जंगबहादुर के मारने का काम अपने सिर पर लेता हूँ और उसके बाद युवराज को मार कर महारानी के पुत्र कुमार रणेंद्रविक्रम को राजसिंहासन पर बैठाने में पूरी सहायता करूँगा।" इसके बाद महारानी ने शपथ की कि "यदि वीरध्वज यह काम करेगा तो मैं उसे महामात्य का पद प्रदान करूँगी और यह पद उसके घराने के लिये पुश्तैनी कर दिया जायगा और जब तक उसके वंश में

कोई रहेगा और शुभचिंतकतापूर्वक महाराज और उनके वंशधरों को सेवा करता रहेगा उसके अतिरिक्त दूसरा कोई नैपाल के महामात्य पद पर नियत न किया जायगा। उनके सात खून तक, यदि वह खून किसी राज परिवार के न हों माफ रहेंगे।"

इस गंगा-गौरैया के बाद महारानी और वीरध्वज ने यह षड्यंत्र रचा कि जंगबहादुर को इस बात पर पहिले उद्यत किया जाय कि वे रात को अपने भाइयों के साथ उस स्थान में जहाँ महाराज और दोनों राजकुमार अर्थात् युवराज सुरेंद्र-विक्रम और राजकुमार उपेंद्रविक्रम सोते हैं सोएँ। जब जंग-बहादुर अपने भाइयों समेत वहाँ सो जाँय तब वीरध्वज और उसके संगी पहले महाराज और राजकुमारों पर आक्रमण करके उनका काम तमाम कर डालें। फिर इस अपने किए घोर पातक का आरोप जंगबहादुर और उसके भाइयों पर लगादें। बस महारानी उस समय जंगबहादुर और उसके भाइयों के सिर हो जाँयगी और ये लोग फाँस लिए जाँयगे। ऐसे अव-सर पर महारानी सेना को जो जंगबहादुर को प्राण से भी अधिक चाहती थी, जंगबहादुर और उसके दलवालों के विरुद्ध उसका सकेंगी और आज्ञा दे सकेंगी कि वे उसे मार-डालें। पर यह काम नितांत दुस्तर था। पहले तो जंगबहादुर महाराज के वासस्थान में सोने पर राजी न होते और यदि उनसे कहा भी जाता तो किस मिस से कहा जाता।

महारानी को भय था कि यदि वे उन्हें आज्ञा देंगी तो जंगबहादुर उनकी बात को इस विषय में कदापि न मानेंगे क्योंकि वे उनसे चौकन्ने रहते थे और फूँक फूँक कर पैर रखते थे। उन्हें यह भी भय था कि ऐसा न हो कि जंगबहादुर को कहीं इसकी गंध मिल जावे और वे इनकार कर जावे अथवा बिगड़ खड़े हो, फिर तो लेने के देने पड़ जाँयगे। अस्तु चाहे जो समझ कर हों उन्होंने यह विचार त्याग दिया और अब उन्हें दूसरा षड्यंत्र रचने की फिक्र पड़ी। इसके लिये महारानी ने अपने पूर्व प्रेम-पात्र गगनसिंह (जिसके वियोग में वे अब तक दुःखी थीं) के पुत्र कप्तान वजीरसिंह को बुलाया और बहुत कुछ बलबुत्ता दे कर उसे भी अपनी अभिसंधि में मिलाया। वजीरसिंह ने महा-रानी से कहा कि यदि आवश्यकता पड़े तो मैं पचास साठ चुने हुए जवानों से आपकी सहाय कर सकता हूँ। पर वजीरसिंह ही से अकेले काम न चला, इसमें विजयराज नाम के एक पंडित से भी सम्मति ली गई। यह विजयराज एक पाठशाला का अध्यापक था और जंगबहादुर के यहाँ आया जाया करता था। इसे यह लोभ दे कर मिलाया गया कि यदि तुम हमारी सहायता करोगे तो जहाँ वीरध्वज महामात्य पद पर नियुक्त होगा, तुम्हें महारानी सदा के लिये राजगुरु का पद प्रदान करेंगी। अब सब लोगों ने मिल कर षड्यंत्र का चिट्ठा बनाया कि वजीरसिंह तो अपने बहादुर साथियों को ले हथियारबंद हो बँदरखेल के महल में बाग के इधर उधर

कोने अँतरे में घुस इस तरह छिप कर बैठे कि किसी को कानों-कान खबर न हो। महारानी इसी बीच में जंगबहादुर को बँदरखेल के महल में भोज के लिये निमंत्रण देवें और जब जंगबहादुर निमंत्रित हो भोजन करने के लिये आवें तो वजीर-सिंह और उसके साथी उन पर वीरध्वज के साथ कूद पड़ें और उन्हें साथियों समेत मार डालें। इस निमंत्रण का भार पंडित विजयराज पर दिया गया और यह निश्चय किया गया कि विजयराज के निमंत्रण दे देने पर वीरध्वज जंगबहादुर को बुलाने के लिये ठीक समय पर भेजा जाय। इस प्रकार षड्-यंत्र का चिट्ठा सबों ने महारानी के साथ मिल कर तैयार किया और सब लोग अपने अपने काम में लगे।

नियत समय पर विजयराज को महारानी ने जंगबहादुर के बुलाने के लिये भेजा। उस समय जंगबहादुर लोगलतालवाली अपनी कोठी में रहते थे। विजयराज को देखते ही जंगबहादुर ने इस ढंग से मानों वे सब बातें जानते थे विजयराज से पूछा—“कहो महाराज, क्या बात है ? अब की आप बहुत दिनों पर देख पड़े हैं। कहो, कुछ कोट की नई बात है ?” विजयराज था डरपोक, वह जंगबहादुर के इस प्रकार पूछने से सकपका गया और उसने समझा, हो न हो जंगबहादुर को षड्यंत्र के रहस्य का पता चल गया। वह डर के मारे इधर उधर हक्का बक्का सा ताकने लगा कि क्या कहें और अंत को उसने कहा कि “श्रीमान् से कोई बात छिपी थोड़े ही रह सकती है।

इसीलिये तो मैं आप के पास आया हूँ।" विजयराज की यह बात सुन जंगबहादुर के होश उड़ गए। वे ताड़ गए कि कुछ दाल में काला अवश्य है। जंगबहादुर ने अपने अवसान सँभाल कर ऐसी आकृति ग्रहण की मानों वे सब कुछ जानते थे। उन्होंने पंडित विजयराज का हाथ पकड़ लिया और उसे ले कर एकांत में चले गए। वहाँ बात ही बात में विजयराज को पट्टी दे कर उन्होंने उसके मुँह से सारी बातें कबुलवा लीं। जब उन्हें गुप्त षड्यंत्र की अभिसंधि का पता चल गया, तब जंगबहादुर ने विजयराज को हवालात में कर दिया और उससे कहा कि "आप को राजगुरु ही का पद चाहिए ना? हम तुम्हें राजगुरु बना देने की प्रतिज्ञा इस बात पर करते हैं कि यदि यह षड्यंत्र ठीक निकला तो तुम राजगुरु बना दिए जाओगे नहीं तो तुम्हें पड़े पड़े जेल में सड़ना होगा।"

इस के बाद जंगबहादुर ने तुरंत अपने भाइयों को बुला कर उनसे सारा समाचार कह सुनाया और आज्ञा दी कि सेना की ६ कंपू अभी तैयार की जावे। उन्हेंाने ने अपने मन में यह विचार दृढ़ किया कि आक्रमण करनेवालों पर अचानक टूट कर उनको एक एक को पकड़ कर बंदी कर लें और उनके षड्यंत्र के सारे पुर्जों को छिन्न भिन्न कर दें। किंतु ऐसा करने में उन्हें एक आपत्ति भी दिखलाई पड़ती थी कि ऐसा न हो कहीं मेरे इस प्रकार सुसज्जित हो कर जाने की खबर महारानी और षड्चक्र में प्रवृत्त लोगों को लग जावे

और वे लोग हथियार फेंक कर मित्रवत् उनका स्वागत करने के लिये आ कर सामने उपस्थित हों और ऐसी अवस्था में दुष्टा महारानी उन पर कहीं यह अभियोग न लगा बैठे कि मैंने तो जंगबहादुर और उसके भाइयों को भोज के लिये निमंत्रित किया और वे सेना ले कर आए, मानों मुझ पर आक्रमण करना था। ऐसी अवस्था में साधारण रीति से विचारनेवाले मुझ पर यह दोषारोपण कर सकेंगे कि मेरे मन में कुछ बुराई अवश्य थी। यह ऐसा आरोप है जिससे छुट-कारा पाना मेरे लिये नितांत दुस्तर है और सीधे सादे सैनिकों के मत को मेरे विरुद्ध उसकाने के लिये तो यह रसायन का काम कर जावेगा। यदि जाने में वे देर करते तो भी अच्छी बात न थी, उसमें भी नाना प्रकार की आशंकाओं के होने की संभावना थी। एक बड़ी गूढ़ समस्या थी कि जिसमें सब प्रकार से हानि ही हानि थी। न जाने में अवज्ञा का दोष, खाली जाने में अपने नाश की आशंका और ससैन्य जाने में आक्रमण के दोष लगने का भय। बहुत सोच विचार कर अंत में सज कर हो जाने का विचार युक्तिपूर्वक जान पड़ा और दो दो कंपू सेना आगे पीछे कर के बीच में जंगबहादुर और उसके भाई साज बाज से लोगलताल से बँदरखेल के राज-भवन की ओर प्रस्थानित हुए।

इधर जितनी ही देर जंगबहादुर के जाने में हो रही थी उतनी ही वीरध्वज की उतावली बढ़ती जाती थी, वह शीघ्र

ही उनका काम समाप्त कर महामात्य का पद प्राप्त करना चाहता था। एक एक पल उसे एक एक वर्ष के बराबर बीत रहा था। वह अपने मन में नाना प्रकार के संकल्प विकल्प कर रहा था और जब उससे बाट न देखी गई तो वह अपने घोड़े पर सवार हो घोड़ा दौड़ाता हुआ स्वयं जंगबहादुर को बुलाने के लिये बँदरखेल से लोगलताल की ओर रवाना हुआ। आधी दूर जाने पर रास्ते में उसे जंगबहादुर की सेना मिली जो धावा मारे दौड़ी चली आती थी। अब वीरध्वज के शरीर में रक्त सूख गया, वह चींटियों का बिल ढूँढ़ने लगा। उसे भय हुआ कि हो न हो जंगबहादुर को इस षड्यंत्र का भी पता चल गया। कहीं रास्ता नहीं था कि भाग कर वह बचता। अंत को उसने ढाटा बाँध कर बात बनाने का निश्चय किया और कलेजा कड़ा कर के अगली सेना के एक सैनिक से कहा कि "मैं जंगबहादुर से मिलना चाहता हूँ।" जंगबहादुर के भाई कृष्णबहादुर ने तुरंत उसका भारा लिया और उसके हथियार उतरवा निःशस्त्र कर उसे वह जंगबहादुर के सामने ले गया। उसने जंगबहादुर के सामने हाथ जोड़ कर कहा कि "श्रीमान् को श्रीमती महारानी ने कोट में बुलाया है।" जंगबहादुर ने उसकी बात सुन कर मुसकरा कर कहा—"यह कैसे हो सकता है, तुम तो अब महामात्य हो गए, भला अब महारानी मुझे क्यों बुलाने लगीं। अब मुझ से उन्हें काम ही क्या है।" वीरध्वज का यह बात सुनते ही रंग उड़ गया और वह

काठ की नाईं सुन्न हो गया । उसे मालूम हो गया कि सारा भेद खुल गया और अब उसका प्राण बचना कठिन है । जंगबहादुर उसकी यह अवस्था देखते ही ताड़ गए कि इस षड्-यंत्र का यही मुख्य नेता है और उन्होंने कप्तान राममेहर को कनखियों से इशारा किया जिसे पाते ही राममेहर ने उसी दम वीरध्वज की बोटी बोटी काट डाली ।

अब तो जंगबहादुर को विजयराज का विश्वास हो गया । वीरध्वज का इस प्रकार काम तमाम कर वे वहाँ से बढ़ते हुए बँदरखेल पहुँचे और पहुँचते ही उहोंने यह कठिन आज्ञा दी कि "जो लोग अपने हथियार रख दें उन्हें बंदी कर लो और जो न मानें उन्हें काट डालो ।" वीर सैनिक अपने योग्य सेनापति की आज्ञा से एक एक को ढूंढ़ कर पकड़ने और काटने लगे । थोड़ी देर तक घोर संहार मचा रहा, तेईस आदमी मारे गए शेष हथियार रख कर बंदी हुए । वजीरसिंह वहाँ से अपने प्राण ले कर भागा और भाग कर हिंदुस्तान में चला गया ।

इस घोर भीषण षड्यंत्र के रहस्योद्घाटन और बँदरखेल के घोर संहार के बाद ही जंगबहादुर को महारानी पर से आशंका हो गई और उन्होंने एक सैनिक दल उनकी गति पर दृष्टि रखने के लिये नियत कर दिया और उसी दम मंत्रिमंडल का असाधारण अधिवेशन करके महारानी पर युवराज के प्राण लेने की चेष्टा, अधिकारातिक्रमण इत्यादि दोषारोपण करके सर्वसम्मति के अनुसार उनके देशनिष्काशन के लिये

निम्न लिखित आज्ञा, जिसकी स्वीकृति महाराज और युवराज ने करदी, दिलवाई—

"आपको जो राज्याधिकार ५ जनवरी सन् १८४३ को राजकीय घोषणा द्वारा प्रदान हुआ था, उसका आपने अतिक्रमण किया और उसके विरुद्ध युवराज के प्राण लेने की चेष्टा की, अतः अब आप से वह अधिकार जो आपको दिया गया था छीन लिया जाता है। आपने महामात्य के प्राण लेने का प्रयत्न किया। आपका यह कृत्य युवराज के प्राण लेने के लिये प्राथमिक कृत्य था, जिससे आपको युवराज के प्राण लेने में सुगमता होती और आप अपने पुत्र रणेंद्रविक्रम को नैपाल के राज्यसिंहासन पर बैठा सकतीं। आप का यह कृत्य राज-परिवार को नाश करने का प्रयत्न करना था जिसके करने के लिये आप को उक्त घोषणा द्वारा स्पष्ट शब्दों में निषेध किया गया था और जिसके विरुद्ध आचरण करके आपने अपना सब प्राप्त अधिकार खो दिया। आपने सैकड़ों मनुष्यों की हत्या कराई और आप अपनी प्रजा के नाश और विपत्ति की कारण हुईं। जब तक आप इस देश में रहेंगी न आप की प्रजा की विपत्ति दूर होगी और न भले आदमियों के प्राण आदि की इस प्रकार की दुरवस्था में रक्षा हो सकेगी। अतः उपरोक्त अत्याचारों के कारण आपको आज्ञा दी जाती है कि आप इस देश का परित्याग कीजिए और शीघ्र काशी को प्रस्थान करने के लिये तैयारी कीजिए।"

महारानी लक्ष्मीदेवी इस आज्ञा के होने के बाद राजमहल से निकल कर काठमांडव के मक्खनताल में मैलगुरू जी के स्थान में चली गईं और वहाँ अपनी यात्रा की तैयारी करने लगीं। वहाँ उनकी गति विगति का निरीक्षण होता रहा और उन पर कठिन आँख रक्खी गई। महारानी ने अपनी सब तैयारी कर ली और अपने साथ अपने पुत्र रणेंद्रविक्रम और वीरेंद्र-विक्रम को ले जाने के लिये उत्कंठा प्रकट की। जंगबहादुर पहले तो राजकुमारों को अपनी माता के साथ देश के बाहर भेजने पर सहमत न हुए और उन्होंने कहा कि राजकुमार यहीं रक्खे जाँयगे और उनकी शिक्षा आदि का उचित प्रबंध किया जायगा। उनके लिये समस्त राजोचित आदर प्रदर्शन किया जायगा। पर दोनों राजकुमार अपनी माता के साथ जाने के लिये उद्यत हो गए और महाराज ने भी उन्हें साथ ले जाने की आज्ञा दे दी। निदान जंगबहादुर को भी अपनी सम्मति देनी पड़ी। राजकीय कोष से उन्हें अठारह लाख रुपया खर्च के लिये दिया गया और वे काशी जाने को प्रस्थानित हुईं।

१६—महाराज राजेंद्रविक्रम की काशीयात्रा और युवराज का अभिषेक।

गगनसिंह के मारने के लिये षड्यंत्र रचने के पहिले से ही महाराज राजेंद्रविक्रम काशी-यात्रा के लिये तैयारी कर रहे थे और कोट के संहार के बाद एक बार महारानी से लड़ कर भी वे काठमांडव से काशी जाने के लिये भवानीसिंह को साथ ले कर भागे थे पर जंगबहादुर ने अपने भाई रणोद्दीपसिंह को उनके पास भेजा था और वे बड़ी कठिनाई से समझा बुझा कर उन्हें फेर ले गए थे।

उस समय तो महाराज मान गए थे पर अब जब महारानी को अमात्यमंडल ने देश निकाले का दंड दिया और वे अपनी यात्रा की तैयारी करके चलने को सन्नद्ध हुईं तो महाराज भी चलने के लिये तैयार हुए। उस समय जंगबहादुर ने महाराज को बहुत कुछ समझाया और चाहा कि वे उस समय काशी न जावें पर उन्होंने नहीं माना। निदान जंगबहादुर को भी विवश हो कर अपनी सम्मति देनी पड़ी। महाराज ने अपनी तीर्थयात्रा का यह हेतु दिया कि "शास्त्रों में लिखा है 'यथा राजा तथा प्रजा।' यदि राजा धर्मात्मा है तो उसकी प्रजा सुखी होती है और यदि पापी है तो प्रजा भी अधर्मी हो जाती है। मुझे अत्यंत दुःख है कि मैं अनेक हत्याओं

का कारण हुआ हूँ और इस हेतु मेरी प्रजा पर घोर विपत्ति पड़ी है। मैं पाप के बोझ के नीचे दबा जा रहा हूँ और मेरा कंधा उसे सहारने में असमर्थ है। मेरी यह प्रवल इच्छा है कि मैं काशीजी जा कर गंगाजी में स्नान कर अपने पापों का प्रायश्चित कर उनसे अपना बोझ हलका करूँ।"

जंगबहादुर ने उनकी यात्रा की भी तैयारी कर दी और इकतीस लाख रुपया तथा पंद्रह लाख के जवाहिरात उनके लिये सर्कारी कोष से देने की आज्ञा दी। इस में तेरह लाख रुपया और जवाहिरात महारानी का निज का था। जंगबहादुर ने महाराज से चलते समय फिर भी कहा कि आप का महारानी के साथ जाना उचित नहीं है वरन अत्यंत लज्जाजनक है। पर उन्होंने न माना। अस्तु, महाराज राजेंद्रविक्रम, महारानी लक्ष्मीदेवी और दोनों राजकुमार रणेंद्रविक्रम और वीरेंद्रविक्रम काठमांडव से काशी के लिये प्रस्थानित हुए। उनके साथ छः रेजिमेंट सेना नैपाल की सीमा तक उन्हें पहुँचाने आई और उन्हें सीमा के बाहर करके काठमांडव पलट गई। जंगबहादुर ने चार विश्वासपात्र कर्मचारी कप्तान खड्गबहादुर राना, काजी करबीर खत्री, काजी हेमदल और सूबा सिद्धिमन को महाराज के साथ भेजा।

युवराज सुरेंद्रविक्रम महाराज की अनुपस्थिति में उनके प्रतिनिधिरूप से नैपाल के शासक नियत हुए। महाराजा

महारानी के साथ २३ नवंबर सन् १८४६ को काठमांडव से चल कर काशी जी में पहुँचे और यहाँ अनेक दान पुण्य करते हुए तीन महीने तक रहे। इस बीच में काशी में अनेक थापा, पांडे और चौतुरिया दल के लोगों ने महाराज को घेरा और उनसे उन्हें अपने साथ देश ले चलने की प्रार्थना की। महाराज ने तीन महीने के बाद काशी से काठमांडव लौटने के लिये तैयारी की और महारानी और कुमारों को काशी में ही छोड़ कर वे सिगौली में नैपाल की सीमा पर, जो अँग्रेजी राज्य में है पहुँचे। देश-निष्कासित नैपाली, जिनकी संख्या दो सौ के लगभग थी अपने मुखिया गुरुप्रसादशाह, पंडित रघुनाथ गुरु और काजी जगतराम पांडे के साथ महाराज के पीछे सिगौली गए। यहाँ महाराज कुछ रोज ठहर गए और यह विचारने लगे कि नैपाल जाना उचित है वा नहीं? सिगौली में नैपालियों ने महाराज को फिर घेरा और वे अनेक प्रकार की ठकुरसुहाती कहने लगे। उन लोगों ने महाराज को अनेक प्रकार से समझाया और झाँसा पट्टी दी कि श्रीमान् नैपाल पर आक्रमण करें और दुष्ट जंगबहादुर को जो अमात्य पद पर हो कर राज्य-अधिकार भोग रहा है मार कर निकाल दें और श्रीमान् नैपाल का अचल साम्राज्य-सुख भोगें। हम लोग श्रीमान् के लिये प्राणपण से सहायता करने के लिये कटिबद्ध हैं। महाराज ने पहिले तो उनकी बातों पर ध्यान नहीं दिया और उन्हें यथायोग्य धनादि दे कर काशी लौटाना चाहा, पर उन लोगों ने कहा-"आप

हमारे महाराज हैं, हम आपको छोड़ कर किस की शरण जाँय ? अब आपको छोड़ दूसरा हमारा कौन है जो हमें अपने साथ अपने देश में ले जायगा।" इस प्रकार की बातों से उन लोगों ने महाराज के हृदय को पिघला लिया और महाराज ने उन्हें अपना सच्चा हितचिंतक समझ उनके मुखिया गुरुप्रसादशाह को अपने पास बुलाया। गुरुप्रसादशाह ने महारानी से पहिले ही से साज बाज कर ली थी और वह उनसे कई चिट्ठियाँ महाराज के पास सेना भरती कर के आक्रमण कर जंगबहादुर के दल को ध्वंस करने के लिये लिखा कर भेजवा चुका था। उसने महाराज से मिलते ही कहा कि "जंगबहादुर नैपाल को अपने हस्तगत कर के स्वयं सब कुछ कर्ता धर्ता बना हुआ है, अतः उचित है कि श्रीमान् सेना ले कर नैपाल पर चढ़ाई करें। अभी कुछ नहीं बिगड़ा है, आप सहज ही में जंगबहादुर का दल ध्वंस कर डालेंगे। यह श्रीमान् की कुलपरंपरा से होता चला आया है, स्वयं श्रीमान् के पिता महाराणा बहादुरशाह ने जब दामोदर पांडे का बल बढ़ गया था तो नैपाल पर चढ़ाई करके उसका ध्वंस कर और अपने पुत्र गीर्वाणयुद्ध को गद्दी से उतार राज्य किया था। उनको यह सफलता गोरखा सैनिकों की सहानुभूति से प्राप्त हुई थी, और यह निश्चय है कि श्रीमान् को भी हम लोगों की सहायता से अवश्य सफलता होगी।"

गुरुप्रसाद की बातें सुन अधिकार-लोलुप महाराज के मुँह

में लार भर आई, पर उन्होंने यह देखा कि केवल दो सौ पुरुषों से क्या हो सकेगा। उन्होंने गुरुप्रसाद से कहा कि "भला ये थोड़े से गोरखे जंगबहादुर की शिक्षित प्रचंड और बड़ी सेना के सामने कैसे ठहर सकेंगे ? मेरे पास सेना कहाँ है जो मैं ऐसा साहस करूँ।" इस पर गुरुप्रसाद ने कहा- "श्रीमान् इसकी तो चिंता ही न करें। मैंने सब काम ठीक कर लिया है। सीमा पर पहुँचते ही कम से कम दो हजार जवान मिल जाँयगे। सब मामला तैयार है केवल श्रीमान् की आज्ञा और रुपए की आवश्यकता है।" फिर क्या था, महाराज तो उसके झाँसे में पहिले ही आ चुके थे, झट निकाल तेईस लाख रुपए उन्होंने गुरुप्रसाद के सिपुर्द कर दिए और वे काठमांडव चलने के लिये तैयारी करने लगे। गुरुप्रसाद को महामात्य का पद दिया गया। काजी जगत्‌बहादुर प्रधान सेनानायक नियत हुए और रघुनाथ पंडित राजगुरु बनाए गए। गुरुप्रसाद आदि ने रुपया तो आपस में बाँट कर उनसे हथियार लिए और तीन चार लाख रुपया खर्च कर के चार रेजिमेंट सेना पाँच पाँच सौ जवानों की भरती कर के तैयार कर दी और सब मामला ठीक हो गया।

इधर तो महाराज नैपाल पर चढ़ाई करने के लिये तैयारी कर रहे थे उधर खड्गबहादुर आदि, जिन्हें जंगबहादुर ने महाराज के साथ उनकी गति विगति निरीक्षण करने के लिये नियुक्त किया था जंगबहादुर को एक एक बात की खबर

देते रहे और महाराज को समय समय पर चेतावनी देते रहे कि "आप यह अच्छा काम नहीं कर रहे हैं इससे सिवाय बुराई के कोई भलाई की आशा नहीं है। भलाई आप की इसी में है कि आप चुपके से अब अपने देश को पलट चलिए।" जब उन लोगों को इसका पता चला कि महाराज ने चुपके से गुरुप्रसादशाह को अमात्य, गुरुरघुनाथ पंडित को राजगुरु और काजी जगत्बहादुर को प्रधान सेनाधिप नियत किया है तो उन लोगों ने फिर महाराज से कहा कि "यह आप कैसी बात कर रहे हैं? इसका परिणाम अच्छा नहीं है।" किंतु महाराज ने उनसे स्पष्ट शब्दों में इनकार कर दिया कि "यह बात बिलकुल मिथ्या और निर्मूल है और मैंने न किसी को नियत किया है और न किसी को कोई आर्थिक सहायता ही दी है। मैं उन लोगों को बहुत शीघ्र नैपाल चलने के पहिले ही अपने पास से निकाल दूँगा।" यह तो महाराज की बहारी बात थी उधर भीतर वे सब कार्रवाई कर रहे थे और महारानी से लिखा पढ़ी कर यह निश्चय कर रहे थे कि किस प्रकार कार्य्य प्रारंभ किया जाय। घड़ी में वे चलने की आज्ञा देते थे, फिर रुकने के लिये सैकड़ों ढंग गढ़ते थे और इस प्रकार समय की प्रतीक्षा कर रहे थे। अंत को जब करबीर खत्री आदि को महाराज की चाल का पता चल गया और वे बार बार मना करने पर भी अपनी चालबाजी से बाज न आए तो

उन्होंने उनकी सारी बातें और चालबाजी का समाचार जंगबहादुर को लिख भेजा। जंगबहादुर ने यह समाचार पा महाराज को लिख भेजा कि "आप तुरंत काठमांडव चले आइए।" इस पर महाराज ने जंगबहादुर को लिख भेजा कि "यदि महारानी को भी काठमांडव वापस आने की आज्ञा दीजाय तो मैं अभी काठमांडव चला आता हूँ।" इस पर जंगबहादुर ने महाराज को लिखा कि "जो कुछ अब तक हो चुका है उस पर ध्यान करते हुए यह असंभव जान पड़ता है कि महारानी को नैपाल में आने की आज्ञा दी जाय क्योंकि देश के हित और कल्याण के लिये यह भली भांति स्पष्ट निश्चय हो चुका है कि वे देश से निकाल दी जाँय। हाँ यदि आप दोनों राजकुमारों को अपने साथ लाना चाहते हैं तो आप भले ही ला सकते हैं। अब भी यदि आप उचित समय के भीतर अपने देश में न फिर आवेंगे तो युवराज सुरेंद्रविक्रम आप के स्थान पर नैपाल के राज-सिंहासन पर बैठाल दिए जाँयगे।"

महाराज उस समय महारानी के हाथ की कठपुतली हो रहे थे और इस पत्र को पा कर चुप्पी साध गए और उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया। वे अपने मनसूबे में लगे हुए थे और आक्रमण कर जंगबहादुर का मूलोच्छेद करने के प्रयत्न का सब्जबाग देख रहे थे। अब आक्रमण करने का सारा चिट्ठा तैयार हो गया और यह निश्चय हुआ कि चढ़ाई करने के

पहिले जंगबहादुर को मार डालना आवश्यक है क्योंकि जब तक जंगबहादुर जीता रहेगा उनकी एक भी चाल नहीं चल सकती। महाराज ने इस काम के लिये दो सैनिकों को नियत किया और उन्हें दो दो तमंचे और निम्नलिखित फर्मान (आज्ञापत्र) लिख कर दिया और उन्हें नैपाल में जंगबहादुर के मारने के लिये भेजा। आज्ञापत्र में लिखा था—

"श्री श्री श्री श्री श्री महाराजाधिराज राजेंद्रविक्रम शाह की ओर से नैपाल की सेना और एक करोड़ छानवे लाख प्रजा के नाम—

"जिन पुरुषों के पास यह फर्मान है जिस पर राजकीय मुहर की गई है, हमने उन्हें अपनी यह राजकीय आज्ञा दे कर भेजा है कि वे जंगबहादुर को मारेंगे। यह बात तुम लोगों पर प्रकट हो कि जो उनके मार्ग में अड़चन डालेगा वा उन्हें किसी प्रकार की हानि पहुँचावेगा वह जीता भाड़ में झोंक दिया जायगा और जो उन्हें हमारी इस आज्ञा को पूरा करने में सहायता प्रदान करेगा हम उसे उसकी योग्यता और पद के अनुसार धन, मान्य और भूमि प्रदान करेंगे।"

दोनों सैनिक महाराज की आज्ञा पा फर्मान ले और बीड़ा उठा कर जंगबहादुर को मारने के लिये नैपाल में घुसे और काठमांडव की ओर चले। उन्हें नैपाल में घुसे कुछ ही दिन हुए थे कि एक दिन १२ मई सन् १८४७ को पुलिस ने उन्हें अचानक पकड़ लिया और पूछ ताछ करने पर जब उन

लोगों ने कोई संतोषजनक उत्तर नहीं दिया तब पुलिस ने उनकी तलाशी ली। तलाशी लेने से उनके पास दो दो तमंचे और एक एक फर्मान मिला तो पुलिस ने उनकी चालान काठमांडव में की। वहाँ उनको मुँहकही लिखी गई तो उन लोगों ने समस्त षड्यंत्र का विवरण, प्रारंभिक अवस्था से ले कर अंतिम तक, जो कुछ हुआ था और जो होनेवाला था कह सुनाया। जंगबहादुर दोनों घातकों को अपने साथ टांडीखेल की परेड पर ले गए और उन्होंने सारी सेना को सुसज्जित होने के लिये बिगुल दिया। सब सेना बात की बात में अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित हो पड़ाव में पहुँची और जंगबहादुर के चारों ओर खड़ी हो गई। जंगबहादुर दोनों घातकों को अपनी दोनों ओर खड़ा करके बीच में खड़े हो गए और उन्होंने महाराज का फर्मान पढ़ कर सारी सेना को सुना दिया और कहा—"आप लोगों में सब छोटे बड़ों को बीती बातों का अच्छी तरह परिचय है। महाराज तुम्हें जंगबहादुर को मार डालने की आज्ञा देते हैं और यह लो जंगबहादुर खड़ा है। सैनिको! तुम में कोई है जो मुझे मार डाल सके?" जंगबहादुर की यह बात सुन सब सिपाहियों ने अपना हथियार समर्पण किया और वे एक स्वर से बोले—

"हम आप की आज्ञा के अतिरिक्त किसी की आज्ञा नहीं मानते और न किसी की आज्ञा को माननीय समझते हैं। गत घटना से आपकी जाज्वल्यमती योग्यता स्पष्ट हो गई है।

जब तक आप हैं हमें विश्वास है कि आप हमारे देश की नाँव को आपत्तियों से खे कर पार लगावेंगे। हम सदैव आपकी आज्ञा मानने के लिये उद्यत हैं।"

जंगबहादुर ने तीन बार सेना को झुक कर प्रणाम किया और उसके आज्ञानुचारित्व और हितचिंतकता के लिये उसे धन्यवाद दिया। फिर सेना के बीच एक ऊँचे स्थान पर खड़े हो कर उन्होंने निम्न लिखित घोषणा को पढ़ कर सुनाया—

"महाराज राजेंद्रविक्रमशाह अब विदेश में रहते हैं। वे कई बार अपने पागलपने का स्पष्ट परिचय दे चुके हैं जिससे यह असंभव जान पड़ता है कि उन पर विशेष विश्वास किया जाय। अतः यह सब जन-समुदाय पर प्रकाशित किया जाता है कि आज के दिन से वे राजसिंहासन से च्युत समझे जावें और आज से ही युवराज कुमार सुरेंद्रविक्रमशाह उनके स्थान पर नैपाल के सम्राट राजसिंहासनासीन माने जावें।"

सेना ने यह घोषणा सुन फिर स्वीकृति के उपलक्ष में अपने शस्त्र अर्पण किए और जंगबहादुर ने युवराज सुरेंद्रविक्रम को बुला भेजा। उनके आते ही सेना ने तोपों की सलामी दी और उनकी राजगद्दी की घोषणा सारे राज्य में हो गई।

उसी दिन युवराज के अभिषेक का सारा संभार किया

गया और युवराज का नैपाल के राजसिंहासन पर अभिषेक किया गया। सैनिकों को एक पखवारे की छुट्टी दी गई और चारों ओर महाराज सुरेंद्रविक्रम की दुहाई फिर गई। उसके दूसरे दिन १३ मई सन् १८४७ को जंगबहादुर ने मंत्रिमंडल को आमंत्रित किया और उसमें ३७० देशिक और सैनिक नायकों के हस्ताक्षर से महाराज राजेंद्रविक्रम को निम्न लिखित पत्र भिजवाया—

"(१) श्रीमान् ने कालापांडे से मिल कर योग्य मंत्री भीमसेन थापा के प्राण लिए और फिर उनके विरोधी थाप लोगों से मिल कर बहुतेरे पांडे लोगों को भी मरवा डाला। (२) श्रीमान् छोटी महारानी लक्ष्मीदेवी के साथ साजिश करके दूसरे अमात्य मातबरसिंह के प्राण लेने के कारण हुए। (३) शास्त्र, लोक और कुलधर्म के विरुद्ध श्रीमान् ने अपने समस्त राजाधिकार महारानी को समर्पण कर दिए और इस प्रकार कोट के और बँदरखेल के संहार के हेतु हुए, तथा (४) विदेश में रह कर श्रीमान् ने महामात्य जंगबहादुर के मारने के लिये आज्ञा भेजी। इन सब बातों से यह स्पष्ट है कि श्रीमान् उस देश के राज्य करने के योग्य नहीं हैं जिस पर ईश्वर ने श्रीमान् को राजा बनाया था। अतः हम लोगों ने देश की प्रजा और महामंत्रियों की एकमति से युवराज सुरेंद्र-विक्रमशाह को नैपाल के राजसिंहासन पर बैठा लिया है। श्रीमान् पर प्रगट रहे कि श्रीमान् अब यहाँ के राजा नहीं

रहे। हम लागों का यह कदापि अभिप्राय नहीं है कि श्रीमान् देश के बाहर मारे मारे फिरें। यदि श्रीमान् अपने देश में आना चाहें तो आ सकते हैं। पर यह स्मरण रहे कि यह निश्चय हो चुका है कि अब श्रीमान् का प्रबंध में कोई अधिकार नहीं रहेगा और न श्रीमान् को कोई अन्य अधिकार प्राप्त होंगे। यदि श्रीमान् सर्कार अँगरेजी के राज्य में रहना चाहें तो नैपाल सर्कार श्रीमान् के गुजारे के लिये उचित धन देना स्वीकार करेगी। पर यदि श्रीमान् अपने देश में पलट आवें तो हम श्रीमान् को विश्वास दिलाते हैं कि यहाँ श्रीमान् के लिये वही आदर और सत्कार प्रदर्शित किया जायगा जो एक राज्य-च्युत महाराज नैपाल के लिये उचित है।"

इधर यह पत्र महाराज राजेंद्रविक्रमशाह के पास भेजा गया उधर नैपाल के उन दंडित पुरुषों के नाम जिन्हें कोट और बँदरखेल के संहार में सम्मिलित होने के अतिरिक्त किसी और कारण से देश-निकाले का दंड दिया गया था एक घोषणापत्र निकाला गया जिसमें यह प्रकाशित किया गया कि "यदि वे लोग चाहें तो सूचना पाने से एक सप्ताह के भीतर अपने देश में लौट आवें और यदि वे ऐसा न करेंगे तो वे बाहरी माने जाँयगे और यदि फिर वे अपने देश में देखे जाँयगे तो उनको उचित दंड दिया जायगा।" बहुतेरे तो यह सूचना पाते ही अपने देश को चले गए पर कितने ही लोग विशेष कर वे लोग जिन्हें गुरुप्रसादशाह ने रेजिमेंट में

भरती किया था गुरुप्रसाद की बातों में आ गए और अपने देश को नहीं गए।

महाराज राजेंद्रविक्रम यह पत्र पा कर और भी अधिक कुढ़े और उन्होंने गुरुप्रसादशाह को बुला भेजा। गुरुप्रसाद ने कहा कि "अब नैपाल पर चढ़ाई करनी चाहिए, मुझे आशा है कि नैपाल में पैर रखते ही सारी प्रजा श्रीमान् की ओर हो जायगी और सारी सेना जिस पर जंगबहादुर का इतना अधिकार है यदि श्रीमान् के सामने भेजी जायगी तो वह कभी श्रीमान् के ऊपर वा सामने शस्त्र प्रहार न करेगी वरन् अपने हथियार श्रीमान् के चरणों पर रखदेगी और वही सेना जंगबहादुर के ऊपर श्रीमान् के आज्ञानुसार आक्रमण करने को तैयार होगी।" गुरुप्रसाद की इस आशा से भरी बातों को सुन कर महाराज राजेंद्रविक्रम आक्रमण करने पर सहमत हुए और तैयारी होने लगी।

जून के महीने के अंत में महाराज राजेंद्रविक्रमशाह ने नैपाल की सीमा पार कर के अलाव में पड़ाव किया और यहीं पर उनकी नई भरती की हुई चार रेजिमेंट सेना को ले कर गुरुप्रसादशाह उन्हें मिले। वे यहाँ ठहरे रहे और इस विचार में थे कि किधर से आक्रमण किया जाय। खबर देने वाले ने इस बात की सूचना जंगबहादुर को दी कि महाराज नैपाल की सीमा के भीतर आए हैं और अलाव में ठहरे हुए हैं। उनके साथ बहुत से आदमी इकट्ठे हैं और उनका विचार

कुछ आक्रमण करने का दिखाई पड़ता है। जंगबहादुर ने यह सूचना पाते ही कप्तान सनकसिंह को गोरखनाथ रेजिमेंट ले कर यह कह के भेजा कि वह वहाँ जा कर देखें कि महाराज कोई गड़बड़ तो नहीं करते हैं? यदि करें तो वह उसका अवरोध करें। सनकसिंह से चलते समय जंगबहादुर ने यह भी कह दिया कि तुम अपनी सेना मकवानपुर से ले जा कर रास्ते को रोक लेना जिसमें ऐसा न हो कि वह उपद्रव मचा कर फिर हिंदुस्तान में भाग जावे। सनकसिंह गोरखनाथ रेजिमेंट को ले कर काठमांडव से प्रस्थानित हुआ पर थोड़ी ही देर में जंगबहादुर को यह भी सूचना मिली कि महाराज का आक्रमण लूट करने के लिये नहीं है किंतु उनके साथ ३००० सैनिक हैं और उनका उद्देश चढ़ाई करने का जान पड़ता है। यह समाचार पाते ही जंगबहादुर ने अपने भाई जरनल बंबहादुर को चार पाँच रेजिमेंट सेना ले कर सनकसिंह की सहायता करने के लिये भेजा।

सनकसिंह काठमांडव से चलके जब विसौलिया पहुँचा तो उसे खबर मिली कि महाराज अपनी नई सेना लिए अब तक अलाव में डटे हैं। वह वहाँ से बिना दम मारे कूच करता हुआ २८ जुलाई सन् १८४७ को प्रातःकाल पौ फटने के पहले अलाव में पहुँचते ही महाराज की सेना पर टूट पड़ा। रघुनाथ पंडित तो सीमा के किनारे पर मँडरा रहा था, वह नैपाली सेना के आने का समाचार पाते ही डर कर चुपके

से जहाँ तक रुपया उसे मिल सका ले कर काशी को खिसक गया पर गुरुप्रसाद महाराज के साथ था। सनकसिंह ने ऐसा समय ताक कर छापा मारा कि महाराज के सैनिकों को अस्त्र ग्रहण करने का अवकाश न मिल सका। आधी घड़ी तक घोर घमासान युद्ध हुआ और महाराज की सेना के दे ढाई सौ सैनिक मारे गए। फिर क्या था भगदड़ मची और सब लोग घबड़ा कर अंधकार में इतस्ततः भागने लगे। इस लड़ाई में यद्यपि सनकसिंह के पास एक ही रेजिमेंट सेना थी जो महाराज की चार रेजिमेंट सेना की अपेक्षा चतुर्थांश थी, पर वह शिक्षित थी। महाराज की सेना एक तो अंधकार के कारण योंही भौचक्के में पड़ी थी दूसरे अशिक्षित, होने से सनकसिंह की गोरखनाथ रेजिमेंट का मुकाबला न कर सकी और थोड़ी देर की लड़ाई में भाग निकली। सनकसिंह अपनी सेना के साथ उन पर मरभूखे सिंह की तरह टूट पड़ा और जो मिला उसे वह तलवार के घाट उतारने लगा। महाराज के दल के लोग घबड़ा घबड़ा कर बे सिर पैर जिधर जिसके जी में आया भागने लगे। महाराज हाथी पर सवार हो कर भागना ही चाहते थे कि सनकसिंह पहुँच गया और उसने उन्हें वहीं बंदी कर लिया। गुरुप्रसाद पकड़ा नहीं गया और वह भाग कर हिंदुस्तान की ओर चला गया और वहाँ से उसने काशी की राह ली। इस युद्ध में सनकसिंह की ओर का कोई मारा तो नहीं गया पर इक्कीस आदमी घायल हुए।

महाराज को बंदी कर सनकसिंह ने उन्हें बंद पालकी में अलाव से मकवानपुर पहुँचाया और फिर मकवानपुर से सीसगढ़ी हो कर थानकोट होते हुए वह महाराज को काठमांडव ले गया। ८ वीं अगस्त को महाराज राजेंद्रविक्रमशाह काठमांडव पहुँचे और वहाँ जंगबहादुर ने उनका तोप की सलामी से स्वागत किया पर वहाँ से शीघ्र उन्हें भाटगाँव को भेज दिया। वहाँ वे पदच्युत अधिराज की तरह भाटगाँव के पुराने राजमहल में कठिन देख रेख में रक्खे गए।

यहाँ उन्हें रहते बहुत दिन न हुए थे कि वे उन लोगों के साथ मिल कर जो उनके पास आया जाया करते थे कुछ चाल करने का प्रबंध करने लगे। जंगबहादुर ने इसकी सूचना पाने पर उनका बाहर निकलना और लोगों से मिलना बंद कर दिया और थोड़े दिन बाद उन्हें वहाँ से हटा कर वे काठमांडव ले आए और वहाँ के पुराने राजमहल में उन्होंने उन्हें कैद किया और उनकी गति के निरीक्षण करने के लिये एक कठिन पहरे का प्रबंध कर दिया और आज्ञा दी कि नित्य प्रति महाराज की गति की सूचना उन्हें दी जाया करे।

१७--जंगबहादुर का सुप्रबंध।

बँदरखेल के संहार के बाद ही जंगबहादुर पुनः अमात्य पद पर स्थायी रूप से नियत किए गए और महाराज के काशी चले आने पर वे अपनी योग्यता और प्रबंध-कुशलता से नैपाल के सब छोटे बड़े के प्रियदर्शन हो गए। दर्बार ने उन्हें भीमसेन थापा की सारी भूमि बाली* में दी और उनकी योग्यता और शुभचिंतकता पर प्रसन्न हो उन्हें अनेक उपाधियाँ प्रदान कीं। जंगबहादुर ने अपने भाइयों को अच्छे अच्छे प्रधान स्थानों पर विशेष कर सेना में नियत किया जहाँ से धीरे धीरे वे सब जरनल पद पर पहुँच गए। इस प्रकार जंगबहादुर ने अपने भाइयों की नियुक्ति से राज्य के सारे विभागों पर अपना अधिकार पूर्ण रूप से जमा लिया। महाराज की अनुपस्थिति में युवराज ने उन पर सारे प्रबंध के काम को डाल रक्खा था जिसे जंगबहादुर ने इस योग्यता से किया कि सारा देश महाराज को भूल कर जंगबहादुर ही को अपना अधीश्वर समझने लगा।

जंगबहादुर प्रबंध में दक्ष होने के अतिरिक्त एक वीर योद्धा थे और इसी लिये वे सैनिकों को बहुत चाहते थे तथा

* नैपाल में कर्मचारियों के वेतन के साथ उन्हें जो भूमि जागीर में मिलती है उसे बाली कहते हैं।

सैनिक भी उनके लिये सदा प्राण देने को उद्यत रहते थे। इस का अनुमान सैनिकों के उस वाक्य से बहुत अच्छी तरह हो सकता है जो उन लोगों ने उस समय कहा था, जब जंगबहादुर ने उन्हें महाराज का फर्मान सुनाकर कहा था–"महाराज तुम्हें जंगबहादुर को मारने की आज्ञा देते हैं और यह देखो जंगबहादुर मरने के लिये खड़ा है। सैनिको, क्या तुममें कोई है जो मुझे मारने का साहस करे।"

बहुत दिनों तक नैपाल राज्य में साधारण सैनिक के पद से मंत्रिमंडल के सदस्य तक के पदों पर भिन्न भिन्न काल में रहने से वे अच्छी तरह शासनपद्धति में दक्ष हो गए थे और अपनी कुशाग्र बुद्धि से प्रत्येक वस्तु के परिणामों पर उनकी दृष्टि बहुत शीघ्र पड़ जाती थी। नैपाल दर्बार में वर्षों रहने से वे प्रत्येक राजपरिवार की प्रकृति से अच्छे प्रकार जानकार हो गए थे और वे इतने देश-कालज्ञ थे कि उचित समय पर उचित काम कर डालने में कभी नहीं चूकते थे।

यह जंगबहादुर की दूरदर्शिता और नीतिनिपुणता का परिणाम था कि लक्ष्मीदेवी जैसी भयानक महारानी बात की बात में नैपाल राज्य से पृथक करके सदा के लिये वहाँ से निकाल दी गई और महाराज राजेंद्रविक्रम का आक्रमण निरर्थक हुआ और सहज में ही वे भी राजसिंहासन से च्युत कर दिए गए।

जिन महाराज राजेंद्रविक्रम और महारानी लक्ष्मीदेवी

के अधीन रहकर मातबरसिंह ऐसे योग्य, वयोवृद्ध और अनुभवी अमात्य की कुछ दाल न गली तथा जिस सुरेंद्र-विक्रम के सुधारने में वे अकृतकार्य्य प्रतीत हुए उन्हीं लोगों के साथ रह कर जंगबहादुर ने अपनी नीतिपरायणता से महरानी को देश से निकाला तथा राजा को राजसिंहासन से च्युत कर युवराज को राजसिंहासन पर बैठा इतना सुधार दिया कि उसका राजत्वकाल सब प्रकार से नैपाल इतिहास में स्वर्णाक्षर से लिखने योग्य हो गया।

प्रजावात्सल्य जंगबहादुर का थोड़े ही दिनों में इतना बढ़ गया था कि प्रजा महाराज को भूल कर जंगबहादुर को ही अपना सर्वस्व समझने लगी थी। महाराज राजेंद्रविक्रम के बंदी होने में स्वयं जंगबहादुर को आशंका थी कि प्रजा उनका पक्ष करेगी और इसी लिये उन्होंने उन्हें अलाव से सीधे काठ-मांडव न ले जाकर मकवानपुर से होकर सीसगढ़ी और थान-कोट के रास्ते से ले जाने की आज्ञा दी थी, पर मार्ग में महा-राज को बंदी बनाकर ले जाते हुए देख प्रजा ने सहानुभूति प्रगट करने के बदले उलटे 'जंगबहादुर की जय, जंगबहादुर की जय' शब्द की घोषणा की।

जंगबहादुर बहुत दिनों से ब्रिटिश सरकार के शुभचिंतक हो गए थे और जिस समय पहली बार सन् १८४५ में अंग्रेजों और सिक्खों के बीच लड़ाई छिड़ी थी तो सिक्खों ने नैपाल की सरकार से सहायता माँगी थी उस समय जंगबहादुर मं-

मंडल के एक साधारण सदस्य थे। जब सहायता की बात विचार के लिये मंत्रिमंडल के सामने उपस्थित की गई तो मंत्रिमंडल के प्रधान अमात्य फतेहज़ंग और अभिमान तथा दलभंजन पांडे की सम्मति थी कि नैपाल सर्कार सिक्खों की सहायता करे, पर जंगबहादुर और सर्दार गगनसिंह ने उनका प्रबल विरोध किया था और कहा था कि जब सर्कार अंग्रेज हमारे साथ मित्रता का बर्ताव रखती है तो उसके विरुद्ध सहायता करना किसी प्रकार से उचित नहीं है। उस समय महारानी और महाराज को भी यही बात युक्तियुक्त प्रतीत हुई थी और बहु-सम्मत्यनुसार यही निश्चय हुआ था कि नैपाल सर्कार सिक्खों को सहायता देने के विषय में उस समय अपना निश्चय प्रगट करेगी जब सिक्ख लोग दिल्ली पर अपना अधिकार जमा लेंगे।

मई सन् १८४८ में जंगबहादुर को अंगरेजी रेजिडेंट से यह सूचना मिली कि अधिक संभव है कि सर्कार अंग्रेज और सिक्खों के बीच शीघ्र ही लड़ाई छिड़ जाय। यह समाचार पा जंगबहादुर ने सर्कार अंग्रेज के गवर्नर-जनरल लार्ड डेलहौजी को यह लिख भेजा कि यदि सहायता की आवश्यकता पड़े तो मैं छः रेजिमेंट सेना लेकर आपकी सहायता करने के लिये उद्यत हूँ। लार्ड डेलहौजी ने जंगबहादुर के इस पत्र के उत्तर में उन्हें धन्यवाद देते हुए यह लिख भेजा कि अभी अंग्रेजी सर्कार को सहायता की आवश्यकता नहीं है यदि

आवश्यकता प्रतीत होगी तो अवश्य आपको कष्ट दिया जायगा। चार पाँच महीने बाद लड़ाई प्रारंभ होने पर जंगबहादुर ने अक्तूबर में फिर गवर्नर-जनरल को दुबारा यह लिख भेजा कि यदि आवश्यकता हो तो मैं सहायता देने के लिये उद्यत हूँ, पर गवर्नर-जनरल ने उत्तर में उनको धन्यवाद दिया और यही लिख भेजा कि सर्कार अंग्रेज को इस लड़ाई के लिये आपकी सहायता की आवश्यकता नहीं है।

दिसंबर सन् १८४८ की २२ तारीख को महाराज सुरेंद्रविक्रम ने तराई की ओर शिकार खेलने के लिये प्रस्थान किया। जंगबहादुर ने नए महाराज के लिये बड़ी तैयारी की और उनके साथ जाने के लिये सब प्रधान कर्मचारियों को आज्ञा दी। ३२००० सैनिक पदाति. ३०० सवार, ५२ तोपें, २५ घोड़चढ़ी तोपें, २००० खलासी और ७०० रसदवाले महाराज के साथ चले। महाराज की सवारी बड़े धूम धाम से निकली और बिसौलिया में पहुँच कर शिकार खेलना प्रारंभ हुआ। महाराज ने आठ बाघ और दो बारहसिंहे पथरघट्टा पहुँचने के पहले ही मारे, पर महाराज के दल में ज्वर का रोग फैल गया और स्वयं महाराज बीमार पड़ गए और अंत को महाराज को विवश होकर काठमांडव लौट आना पड़ा।

केवल तीन चार वर्ष में ही जंगबहादुर ने नैपाल में ऐसा अच्छा प्रबंध कर दिया कि सारे देश में शांति का राज्य स्थापित हो गया। उन्होंने काठमांडव से भेजी और दोती तक जहाँ

कोसी के किनारे वहाँ के मोटिया लोग डाँका मारा करते थे, चौड़ी सड़क बनने के लिये तीन लाख रुपए की स्वीकृति दी और सड़क बन जाने पर उसके किनारे पुलिस का पहरा बैठा दिया कि लोग रात दिन उस पर से बेखटके जा आ सकें। इसके अतिरिक्त जंगबहादुर ने नैपाल जैसे देश में शीतला के टीके का प्रचार ऐसे समय में किया जब हिंदुस्तान में लोग टीके के नाम तक को नहीं जानते थे। उन्होंने तन मन धन से अपनी प्रजा के जिसके वे शासक थे प्राण धन की रक्षा की चेष्टा की और थोड़े ही दिनों में वे सारे देश की प्रजा के मनोरंजन करनेवाले हो गए।

———

१८—गुरुप्रसाद।

गुरुप्रसाद चैातुरिया फतेहजंगशाह का छोटा भाइ था और सन् १८४२ में जब फतेहजंगशाह नैपाल के महामात्य थे तो यह वहाँ का धर्माध्यक्ष था। कोट के संहार में फतेहजंग के मारे जाने पर यह हिंदुस्तान में भाग आया था और तभी से यह जंगबहादुर का जानी दुश्मन हो रहा था। यह लिखा जा चुका है कि महाराज राजेंद्रविक्रम जब काशी की यात्रा को अपनी रानी लक्ष्मीदेवी के साथ आए थे तो इसने उन्हें बहका कर अपने पंजे में फँसा लिया था और महारानी से मिलकर उन्हें नैपाल पर चढ़ाई करने की उत्तेजना दी थी और उनके लिये सेना भी संग्रह की थी। इसने महाराज को यहाँ तक उभाड़ा कि महाराज ने दो आदमियों को जंगबहादुर को मारने के लिये फर्मान देकर काठमांडव भेजा था और अलाव में आक्रमण करने के लिये पड़ाव डाला था। जब अलाव की लड़ाई में महाराज राजेंद्रविक्रम पकड़े गए तो यह वहाँ से भाग कर काशी चला आया। यहाँ उससे चुपचाप न रहा गया और वह समय समय पर जंगबहादुर के प्राण लेने के लिये षड्यंत्र रचता और बदमाशों को भेजता रहा।

सन् १८४८ के मार्च में इसने दो बदमाशों को जंगबहादुर

के प्राण लेने के लिये काठमांडव भेजा। उन दोनों को उसने राइफलें दीं और वे लोग काठमांडव की ओर प्रस्थानित हुए। ११ अप्रैल के सायंकाल के समय जंगबहादुर पाटन से काठमांडव को आ रहे थे कि अचानक उनकी आँख काल-मोचनघाट के पास एक खेत में पड़ी। वहाँ दो आदमी राइफल लिए छिपे बैठे थे। जंगबहादुर को उन्हें इस समय खेत में बैठे देखकर आशंका हुई। उन्होंने तुरंत उन दोनों को पकड़ने की आज्ञा दी और उनके साथियों ने उनको पकड़ लिया। उनसे पूछा गया कि वे वहाँ क्या कर रहे थे तो उन्होंने कहा कि हम लोग यहाँ कबूतर का शिकार खेल रहे थे। इस पर जंगबहादुर ने उनकी राइफलों की जांच करने के लिये आज्ञा दी तो जाँच करने से मालूम हुआ कि उनकी बंदूकों में छर्रें की जगह गोली भरी हुई थी। इससे जंगबहादुर की शंका और भी बढ़ी। अब धमकी देना प्रारंभ किया गया। पर उन दोनों बदमाशों ने सिवाय इसके कि हम लोग कबूतर का शिकार खेल रहे थे दूसरी बात नहीं कही। अंत में उन दोनों पर न्यायालय में अभियोग चलाय गया। वहाँ उन्होंने अपने दोष को स्वीकार किया और कहा कि गुरुप्रसाद ने हम लोगों को जंगबहादुर को मारने के लिये भेजा था अतः न्यायालय की आज्ञा से उन्हें प्राणदंड दिया गया।

जुलाई के महीने में फिर गुरुप्रसाद ने तीन चार बदमाशों को जंगबहादुर के मारने के लिये काठमांडव भेजा। ये लोग

वहाँ जाकर एक नेवार के घर पर ठहरे और उन्होंने चतुरता से उस नेवार को अपनी अभिसंधि में मिला लिया और वहाँ वे समय की प्रतीक्षा करने लगे। २७ जूलाई को आधी रात के समय जंगबहादुर को पता चला कि कुछ बदमाश काठमांडव में अमुक नेवार के घर पर ठहरे हैं और उनके प्राण लेने के लिये अभिसंधि कर रहे हैं। उन्होंने कप्तान सनकसिंह को तुरंत बुलाकर आज्ञा दी कि हमारे २५ संरक्षक लेकर उस नेवार के घर पर जाओ और उन बदमाशों को पकड़ लाओ। सनकसिंह तुरंत २५ संरक्षकों का दल लिए उस नेवार के घर पर पहुँचा और उसने उसे फौरनही चारों ओर से घेर लिया। उन तीन बदमाशों ने भागने की चेष्टा की और वे दीवाल फाँद कर भागने लगे पर उनमें से एक सिर के बल गिरा और उसकी खोपड़ी टूट गई। वह तो वहीं मर गया पर शेष दो पकड़ लिए गए। जाँच करने से इस बात का पता चला कि जिस के यहाँ वे छिपे थे वह नेवार भी इस अभिसंधि में सम्मिलित था। उन सबों पर अभियोग चलाया गया और न्यायालय से दोनों बदमाशों को जन्म कैद तथा नेवार को देश निकाले का दंड दिया गया।

मई सन् १८४६ में गुरुप्रसाद ने फिर जंगबहादुर के प्राण लेने की चेष्टा की। इस बार उसने अपने आदमियों को भेज कर जंगबहादुर के यहाँ की एक दासी को जो पहले चौतुरिया घराने में दासी रह चुकी थी फोड़ लिया और

उसके द्वारा जंगबहादुर को विष दिलाना चाहा। दैववश जंगबहादुर को एक दूसरी दासी से यह पता चल गया कि उन्हें विष देने का प्रतत्न किया गया है और वे सजग हो गए और उन्होंने उस दासी को विष प्रयोग करने के पहले ही निकाल बाहर किया।

१६—युरोपयात्रा।

सिक्खों की दूसरी लड़ाई समाप्त हो गई और अंग्रेज़ों की विजय वैजयंती पंजाब की पाँच नदियों के बीच फहराने लगी। महाराज रणजीतसिंह की विधवा महारानी चंद्रकुअरि को अंग्रेजों ने बंदी कर लिया और उन्हें लाकर काशी के पास चुनार के किले में कैद किया। जंगबहादुर उस समय अंग्रेजों के अभ्युदय और उद्भव को बड़े कौतूहल की दृष्टि से देखते रहे। वे जन्म से बीर उत्पन्न हुए थे और बीरोचित कार्यों के, चाहे वे किसी जाति के क्यों न हों, अंतष्करण से उपासक थे। वे अंग्रेज़ों की योग्यता, बीरता, युद्धकौशल, कालपरायणता इत्यादि शुभ गुणों के अभिभावक थे। उनकी यह प्रबल इच्छा थी कि यदि अवकाश मिले तो एक बार उनके देश में जाकर उनकी रीति नीति विद्या और सभ्यता इत्यादि का विचारपूर्वक पर्य्यालोचन करें और उनके सद्गुणों का जिससे वे संसार में प्रभावशाली और विजयी हो रहे थे अपने देश में प्रचार करें और उनकी साम्राज्ञी से मिलकर उनके साथ घनिष्टता स्थापति करें।

महारानी चंद्रकुँअरि चुनार में बहुत दिनों तक बंदीगृह में न रहीं। वे कारावास के दुःख से तंग आकर अपनी एक दासी को अपना स्थानापन्न छोड़ साधुनी का भेस कर चुपके से

निकल भागीं और येन केन प्रकारेण कहीं तो नाव पर और कहीं डोली आदि पर मार्ग को तै करती हुईं २१ अप्रैल सन् १८४९ को नैपाल राज्य में भिच्छाखोटी स्थान पर पहुँचीं। महारानी का स्वास्थ्य इतनी दूर यात्रा करने से बिगड़ गया था और उन्होंने ऐसा रूप बना रक्खा था कि कोई उन्हें देखकर सिवाय साधुनी के और कुछ नहीं जान सकता था। उन्होंने नैपाल राज्य में पहुँच कर नैपाल सर्कार के पास अपना परिचय लिख भेजा और नैपाल दर्बार से प्रार्थना की कि वह उनकी अवस्थानुसार उन्हें उचित आतिथ्य और शरण प्रदान करे। महारानी का यह पत्र नैपाल दर्बार में उपास्थित किया गया और स लोग बड़े धर्मसंकट में पड़े। हिंदूशास्त्रानुसार उनका यह धर्म था कि वे शरणप्राप्त की रक्षा करते हुए अपने यहाँ आए अतिथि को उचित आतिथ्य तथा सत्कारपूर्वक अभय प्रदान करते और उस की रक्षा प्राणपण से करते, पर प्रतिज्ञानुसार वे सर्कार अंग्रेज के राजनैतिक कैदी को न शरण दे सकते थे और न उसकी रक्षा ही कर सकते थे, बल्कि उनका कर्त्तव्य था कि वे उसे पकड़ के सर्कार अंग्रेज के हवाले करते। बीर जंगबहादुर ने ऐसे समय में धर्म को प्रधानता दी और स्पष्ट शब्दों में यह कह दिया कि यह क्षत्रिय का राज्य है और मैं क्षत्रिय होते हुए अपनी शरणप्राप्त महारानी को अवश्य शरण दूँगा, चाहे जो हो, उन्हें कभी सर्कार अंग्रेज़ के हवाले न करूँगा। जंगबहादुर ने महारानी चंद्रकुअँरि के पत्र के उत्तर

में उन्हें लिख भेजा कि मुझे आप की विपत्ति सुन कर बहुत कष्ट हुआ। अब आप को किसी प्रकार की चिंता करने की आवश्यकता नहीं। मैं अब इसका उचित प्रबंध कर दूंगा कि आप की शेष आयु इस देश में सुखपूर्वक कटे। मेरे दो चिकित्सक आप की चिकित्सा करेंगे। दिन अच्छा नहीं है अतः मेरी सम्मति यह है कि आप हाथी की डाँक पर तुरंत यहाँ चली आइए।

महारानी चंद्रकुँअरि पत्र पाते ही काठमांडव को रवाना हुईं और २९ अप्रैल को वे काठमांडव पहुँच गईं। वहाँ जंगबहादुर ने उन्हें बड़े आदर-सत्कार-पूर्वक हाथों हाथ लिया और उनकी सेवा में वे स्वयं उपस्थित हुए। कुशल प्रश्नानंतर उन्होंने उनको राजप्रासाद में ठहराया। दूसरे दिन वे फिर महारानी से मिलने आये और उनके सारे दुःखों की कथा को सुन कर उन्होंने उनसे सहानुभूति प्रकाशित की और उन्हें अनेक प्रकार से संतोष दिलाया।

जब रानी चंद्रकुँअरि के काठमांडव पहुँचने का पता अंग्रेजी रेजिडेंट को मिला तो उन्होंने जंगबहादुर को सम्मति दी कि ऐसी अवस्था में आप को यही उचित है कि आप रानी चंद्रकुँअरि को अंग्रेजी सर्कार के हवाले कर दीजिए, क्योंकि यदि आप ऐसा न करके उन्हें नैपाल में रखिएगा तो सर्कार अंग्रेज और नैपाल के बीच परस्पर वैमनस्य होने की अधिक संभावना है और ऐसा होना अच्छा नहीं है। इस पर जंग-

बहादुर ने साफ शब्दों में रेजिडेंट साहेब से कह दिया कि हिंदू होते हुए यह हमारा कर्त्तव्य और धर्म है कि हम शरणागत की रक्षा और उसका उचित सत्कार करें। चाहे जो कुछ हो मैं महारानी चंद्रकुँअरि को कभी सर्कार अंग्रेज को न दूँगा। हाँ इतना अवश्य प्रबंध कर दूँगा कि जब तक वे यहाँ रहें कोई बात अंग्रेजी सर्कार के बिरुद्ध न कर सकें। नैपाल सर्कार उनके भाग जाने की उत्तरदातृ न होगी, हाँ इतना अवश्य कर देगी कि उनके चले जाने की सूचना उसी दम अंग्रेजी सर्कार को दे देगी।

जंगबहादुर ने महारानी के काठमांडव में रहने के लिये सब कुछ उचित प्रबंध कर दिया और उनके गुजारे के लिये २५००) माहवारी नियत कर दिया तथा उनके महल बनवाने के लिये ३००००) दिया, जिससे महारानी ने बाघमती नदी के दक्षिण तट पर थापाथाली में एक उत्तम प्रासाद पंजाबी ढंग का निर्माण कराया जो अब तक चतुर्भुज प्रासाद के नाम से प्रख्यात है और जिसे महारानी ने वहाँ से चलते समय एक ब्राह्मण को दान कर दिया था और जिसे पीछे उस ब्राह्मण से जंगबहादुर ने मोल ले लिया तथा वहाँ तोपखाना कर दिया था।

इस प्रकार तीन वर्ष में देश में शांति स्थापन कर जंगबहादुर ने जनवरी सन् १८५० में बिलायत जाने की तैयारी की और अपने भाइयों में से जरनल बंबहादुर को महामात्य, बद्रीनरसिंह को प्रधान सेनानायक, कृष्णबहादुर को न्यायाध्यक्ष और रणदीप-

सिंह को पश्चिमी और पूर्वी प्रांतों का हाकिम नियत कर तथा अपने पितृव्य भाई जयबहादुर को माल का हाकिम बना वे १५ जनवरी को काठमांडव से अपने भाई जगत्शमशेर और धीरशमशेर तथा कप्तान रणमिहर काजी, कड़बड़ खत्री, काजी हेमदल थापा, काजी दिल्लीसिंह वसिनेत, लफ्टेंट लालसिंह खत्री, लफ्टेंट कारबार खत्री, लफ्टेंट भीमसेन-राणा, सूबा सिद्धमन, सूबा शंनरसिंह, सूबेदार दलमर्दन थापा, वैद्य चक्रपाणि, भजुम चित्रकार और चार रसोइए तथा बारह दास और दस सहायकों के साथ प्रस्थानित हुए।

पहला मुकाम काठमांडव से चलकर पथरघट्टा में हुआ। यहाँ जंगबहादुर दो सप्ताह तक शिकार खेलते रहे और उन्होंने छ बाघ, चार सुअर और दो मगर का शिकार किया तथा एक हाथी को खेदा में पकड़ा। पथरघट्टा से चलकर वे ११ फर्वरी को ढाके में पहुँचे, फिर यहाँ से पटने को प्रस्थानित हुए और एक सप्ताह में पटने पहुँचे। यहाँ वे नैपाली गोदाम में ठहरे और २२ फर्वरी को यहाँ से बाँकीपुर गए। बांकीपुर में सर्कार अंग्रेजी के सैनिक और देशिक कर्मचारियों ने उनका स्वागत किया और बड़े आदर सत्कार से उन्हें ले जाकर गोलघर के सामनेवाली कोठी में ठहराया। यहाँ उनके लिये १९ तोपों की सलामी दी गई और आशा प्रकट की गई कि आपके विलायत जाने से सर्कार अंग्रेज और नैपाल के मध्य में मित्रता का संबंध अत्यंत दृढ़ और घनिष्ट हो जायगा।

उस समय हिंदुस्तान में रेल नहीं थी, अतः जंगबहादुर को अपने लाव लश्कर के साथ धुआँकश पर कलकत्ते जाना पड़ा। बाँकीपुर से चल कर वे ग्यारहवें दिन कलकत्ते पहुँचे और चंद्रपालघाट पर उतरे। वहाँ उनकी उचित रीति से अगवानी की गई और फोर्ट विलियम से तोपों की सलामी की गई। सर्कारी कर्मचारियों ने बड़े आवभगत से उनका स्वागत किया और उनको उचित स्थान में ले जाकर ठहराया। ११ मार्च को गवर्मेंट हाउस में एक बहुत बड़ा दर्बार हुआ और लार्ड डेलहौजी ने बड़े बड़े ऊँचे कर्मचारियों के साथ मार्बल-हाल के फाटक पर जंगबहादुर का स्वागत किया और वे बड़े आदर से उन्हें दर्बार में ले गए। कुशल प्रश्नानंतर उन्होंने जंगबहादुर से पूछा कि 'क्या आप किसी अंग्रेजी कर्मचारी को अपने साथ विलायत ले जाना चाहते हैं?" इस पर जंगबहादुर ने कप्तान कवेना को अपने साथ ले जाने के लिये माँगा और लार्ड डेलहौजी ने उक्त कप्तान को उनके साथ जाने की आज्ञा दे दी।

दूसरे दिन जंगबहादुर ने कलकत्ते से जगन्नाथपुरी को प्रस्थान किया और सर्कार अंग्रेज की ओर से उनकी यात्रा के लिये उचित प्रबंध किया गया। जगन्नाथ जी में भगवान् का दर्शन कर जंगबहादुर ने ५००००) के प्रामेसरी नोट जगन्नाथ जी के अटका में चढ़ाए और १८ मार्च को वहाँ से पलट कर वे कलकत्ते पहुँचे। यहाँ वे ६ अप्रैल तक रहे और इस बीच में उन्होंने किला, टकसाल, गोला बारूद का कारख़ाना, अस्पताल, छापाखाना, दम-

दम का टोपी घर, तोप के कारखाने इत्यादि को देखा। ५ अप्रैल को गवर्मेंट हाउस में लार्ड डेलहौजी ने उनके लिये राजकीय बाल का नाच कराया और जंगबहादुर ने उनको इस कृपा के लिये कृतज्ञता प्रकट की। वहाँ से सर हेनरी इलियट उन्हें अपनी गाड़ी में बैठाल कर उनके स्थान पर ले गए और उन्होंने बहुत से विलायत के बड़े आदमियों के नाम उन्हें चिट्ठियाँ लिख कर दीं।

जंगबहादुर ने अपनी यात्रा के लिये पी. ओ. कंपनी से पहले से ही प्रबंध कर रक्खा था की और उक्त कंपनी की एक धुआँकश नौका ५००० पौंड पर किराए पर लेली थी। यह नौका ३०० फुट लंबी, ७५ फुट चौड़ी और १० फुट ऊँची थी और इसमें १२०० यात्री सुखपूर्वक यात्रा कर सकते थे। इस पर इसकी रक्षा को ४ तोपें चढ़ी हुई थीं क्योंकि उस समय समुद्र में प्रायः डाँकू लोग नावों पर डाँका मारा करते थे जिससे नौकाओं को प्रायः लड़ाई भिड़ाई भी करनी पड़ती थी। इसी नौका पर नैपाल के महामात्य बड़े ठाठ ठसक से अपने साथियों समेत ७ अप्रैल सन् १८५० को प्रातःकाल के समय कलकत्ते से युरोप को प्रस्थानित हुए। उनकी बिदाई के समय आठ सौ सैनिक जो उनके साथ काठमांडव से कलकत्ते तक आए थे आँखों में आँसू भर लाए और बिलाप करते हुए अपने देश को पलट पड़े। नौका में हिंदू धर्म के अनुसार उचित प्रबंध किया गया था और सब प्रकार के फल आदि, भोजन की सामग्री और गाएँ तक हिंदुस्तान से

लेकर रख ली गई थीं और इसका भी उचित प्रबंध था कि नौका ठौर ठौर पर बंदरों में रुकती चले, जहाँ लोग उतर कर बाहर स्थल में चौका पानी कर के भोजन पका और खा सकें। इतने उदार विचार के होते हुए कि ऐसे समय में जब हिंदुस्तान से बाहर पैर रखना भी पाप समझा जाता था युरोप यात्रा पर उद्यत हो कर भी जंगबहादुर हिंदू धर्म के छूत छात के बड़े पक्षपाती थे और उन्होंने अपनी इस यात्रा में नौका पर सिवाय फल मूल के अन्य कोई वस्तु नहीं खाई, यहाँ तक कि हिंदू को छोड़ वे दूसरी जाति के अदमी को अपनी गाएं तक नहीं दुहने देते थे। पूधान पूधान स्थानों पर जहाँ नाव रोकी जाती थी वहाँ वे स्थल में उतर पड़ते थे और वहाँ चौका लगवा और तब रोटी बनवा कर खाते थे। धन्य हैं ऐसे पुरुष जिनकी यह धारणा है कि—

श्रेयः स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ॥ गी० ॥

नौका लहर उठते हुए समुद्र की छाती पर से हरहर करती हुई चली और कलकत्ते से चल कर छठे दिन चीनापट्टन अर्थात् मंद्राज में पहुँची। यहाँ उनके उतरते ही फोर्ट सेंट जार्ज से १६ तोपों से उनकी सलामी की गई और स्वयं गवर्नर साहेब उनकी अगवानी के लिये आए और उन्हें अपने साथ अपनी गाड़ी पर बैठाकर उस खीमे तक जो उन्होंने उनके लिये गड़वा रक्खा था ले गए। यहाँ जहाज में फिर खाने पीने की सामग्री

भरी गई और मीठा पानी भर कर रक्खा गया। जंगबहादुर ने भोजन कर अपराह्न में नगर के प्रधान प्रधान स्थानों को देखा। यहाँ उन्हें कलकत्ते से भी बढ़ कर व्यापार दिखाई पड़ा।

दूसरे दिन वे चीनापट्टन से लंका को प्रस्थानित हुए। यहाँ पर लंका के गवर्नर ने बड़े धूम धाम से उनका स्वागत किया और वे उन्हें अपने साथ रास्ते में प्रधान दृश्यों को दिखलाते हुए उनके खीमे तक ले गए। भोजनानंतर जंगबहादुर ने फौज की कवायद वहाँ के गवर्नर के साथ देखी और उनसे बिदा माँगी। लंका में शिकारों से पूर्ण जंगलों को देखकर वे बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने जवाहिरात और मोतियों के बाज़ार को भी देखा। यहाँ की अवस्था के विषय में उन्होंने अपनी दिनचर्य्या में स्वयं लिखा है कि "यहाँ प्रातःकाल सर्दी पड़ती है, दुपहर को गरमी होती है और सायंकाल आँधी पानी आता है और कभी कभी बिजली भी चमकती है।"

लंका से चलकर वे आठवें दिन अदन पहुँचे। यहाँ उस समय चार अंग्रेजी रेजिमेंट सेना रहती थी। यहाँ के एक जर-नल और एक कर्नल ने उनकी अगवानी की और उन्हें उतार कर वे स्थल में लाए। उतरते ही १९ तोपों की सलामी हुई। उन दोनों अंग्रेज सेनापतियों ने उनकी बड़ी आवभगत की और उन्हें अपने साथ लेकर सारा नगर और प्रधान प्रधान स्थान देखलाए।

यहाँ से चलकर वे आठवें दिन स्वेज में पहुँचे। उस समय यहाँ नहर नहीं खोदी गई थी और यह एक डमरूमध्य था जो तीस कोस चौड़ा था और एशिया खंड के अरब देश को अफ्रीका के मिश्र देश से मिलाता हुआ तथा लालसागर और रूम के सागर को अलग करता हुआ उनके बीच में था। अंग्रेजों को उस समय हिंदुस्तान में रूम के सागर से होकर आने में इस स्थल को पार करने में बड़ी असुविधा होती थी और उन्हें मिश्र से होकर असकंदरिया के बंदर तक स्थल मार्ग से जाना पड़ता था। युरोप के प्रथम यात्री वास्को-डिगामा को जो हिंदुस्तान में आया था अफ्रीका के पश्चिमी किनारे से होते हुए दक्षिण में केप गुडहोप के पास से होकर आना पड़ा था जहाँ उसे समुद्र के तूफान में बड़ी कठिनाई झेलनी पड़ी थी। इसी लिये अंग्रेजों ने मिश्र के मार्ग से असकंदरिया तक स्थल मार्ग से जाने की कठिनाई को झेलना उचित समझा था। यद्यपि उन्हें मिश्र के मरुस्थल में यात्रा कर कष्ट भोगना पड़ता था तथापि वे एक तो समुद्र के भयानक तूफानों का सामना करने से बच जाते थे और दूसरे इस ओर से समय भी कम लगता था। यहाँ स्वेज में अंग्रेजों की कुछ सेना रहा करती थी। उस समय कप्तान लिगार्डेट वहाँ अंग्रेजों की सेना के प्रधान सेनापति थे। इन्हीं को अंग्रेजी सर्कार ने जंगबहादुर के स्वागत के लिये नियत किया था। कप्तान लिगार्डेट ने वहाँ उनके स्वागत और यात्रा का उचित

प्रबंध कर रक्खा था और नौका से उतरते ही उन्होंने जंग-बहादुर का बड़े आदर सत्कार से स्वागत किया। स्वेज से सब लोग कुछ जलपान कर मिश्र की राजधानी काहरा को प्रस्थानित हुए। जंगबहादुर के लिये आठ घोड़ों की गाड़ी का प्रबंध अंग्रेज सर्कार की ओर से किया गया था। रास्ते में जिधर उनकी दृष्टि जाती थी चारों ओर उन्हें लक़दक़ बालू का मैदान दिखाई पड़ता था जिसमें दिन के चमकते हुए सूर्य्य की धूप और ताप में उनकी आँखें चौंधियाती थीं। बालू के उड़ने और तेज़ हवा के चलने से यात्रियों को यहाँ एक अद्भुत विपत्ति का सामना करना पड़ा। मृगतृष्णा का स्पष्ट दृश्य उन्हें दिखाई पड़ा और ईश्वर ईश्वर करके वे लोग सब कठिनाइयों को झेलते हुए काहरा पहुँचे। काहरा में जंगबहादुर को अंधों की संख्या बहुत अधिक दिखाई पड़ी जिससे उन्हें बहुत आश्चर्य्य हुआ।

काहरा से जंगबहादुर दल बल सहित फीरोजा नामक धुआँकश नौका पर सवार हो नील नद से हो कर असकंद-रिया को रवाना हुए। असकंदरिया में उस समय प्रसिद्ध मुहम्मदअली के वंशधर अब्बास पाशा रहते थे और यह उनकी राजधानी थी। अब्बास पाशा ने एक बड़े दर्बार में जंगबहादुर का स्वागत किया और जंगबहादुर ने दर्बार में अपने साथ के प्रधान पुरुषों का पाशा से परिचय कराया। जंगबहादुर और अब्बास पाशा के मध्य बहुत देर तक अपने अपने देशों की रह

सहन चाल चलन और राजनैतिक अवस्था आदि के विषयों पर बात चीत होती रही। बिदा होते समय पाशा ने जंगबहादुर को दो कुलीन अरबी घोड़े नज़र किए और जंगबहादुर ने बारह मृगनाभि और एक बहुमूल्य कुकरी जड़ाऊ दस्ते की उन्हें भेंट की और दोनों ने अपना चित्र एक दूसरे को स्मरणार्थ दिया।

दर्बार से उठकर जंगबहादुर होटल-डि-युरोप में अपने डेरे पर आए। थोड़ी देर बाद पाशा ने सैकड़ों गुलामों के सिर पर फल फूल शाक भाजी आदि उनकी जियाफ़त के लिये भेजी। दूसरे दिन जंगबहादुर ने बाग़ (पार्क), पुस्तकालय, पांपिआई की लाट, क्रियोपत्रा की सूची इत्यादि असकंदरिया के प्रधान प्रधान स्थलों और दृश्यों को देखा और उसी दिन रिपन नाम के धूमपोत पर वे वहाँ से मालता को प्रस्थानित हुए।

मार्ग में दैववश जंगबादुर को यह पता लगा कि पोत पर गोघात किया गया है। यह सुनते ही वे क्रोध के मारे आग बबूला हो गए और बिगड़ कर कप्तान कवेना को बुला कर उन्होंने कहा कि यदि अब फिर इस प्रकार का काम पोत पर किया जायगा तो मैं उसी दम इस पोत को छोड़ दूँगा और दूसरी नौका का प्रबंध करूँगा। धूमपोत रूम के सागर से होता हुआ एक सप्ताह में मालता द्वीप में पहुँचा। यहाँ जंगबहादुर की सलामी तोपों से की गई और उनको उतरने के लिये कहा गया पर जंगबहादुर यहाँ नहीं उतरे और धूमपोत ही पर

से टापू के दृश्य को देख कर दूसरे दिन वहाँ से आगे को बढ़े। यहाँ से चल कर नौका छठे दिन जिब्राल्टर में पहुंची और फिर वहाँ से निकल कर पुर्तगाल के पश्चिम से होती हुई २५ मई को इंग्लिस्तान में सौथैंपटन बंदर में जा पहुंची।

२०—जंगबहादुर इंगलैंड में।

सौथैंपटन में जहाज से उतर कर जंगबहादुर ने पी. ओ. कंपनी के मकान में डेरा किया। उनका सारा असबाब जहाज से उतारा गया। असबाब के उतरते ही चुंगी के कर्मचारीगण आ उपस्थित हुए और असबाब की गठरियों को खोल कर देखने के लिये आग्रह करने लगे। जंगबहादुर को उनका यह बर्ताव असह्य मालूम हुआ और उन्होंने उसी दम छः जवान नंगी तलवार ले कर असबाब की रक्षा के लिये तैनात कर दिए और स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि मैं हिंदू होते हुए अपने असबाब को कभी विधर्मियों को छूने न दूँगा, और यदि कोई अंग्रेज मेरे असबाब की गठरियों में अंगुली भी लगायेगा तो मैं अभी दूसरा धूम्रपोत करके फ्रांस को चल दूँगा। अब तो चुंगी के कर्मचारियों को बड़ी कठिनाई उपस्थित हुई। उन लोगों ने अपने प्रधान अफसरों को तार पर तार देना प्रारंभ किया और कई घंटे परस्पर तार उड़ने के बाद अंत में यह निर्धारित हुआ कि जंगबहादुर के साथ के असबाब की राहदारी बिना देखे ही दे दी जाय।

लंडन नगर में जंगबहादुर के स्वागत का उचित प्रबंध राज्य की ओर से किया गया था। उनके ठहरने के लिये टेम्स नदी के किनारे रिचमांड टेरेस नामक प्रासाद में प्रबंध किया गया था। यह रिचमांड प्रासाद लंडन नगर के मध्य भाग में

बना हुआ है। उत्तर ओर सुंदर बाग है जहाँ से नदी का सुहावना दृश्य दिखाई पड़ता है, दक्षिण ओर चौड़ा राजमार्ग है और पश्चिम में एक बड़ा मैदान है जिस में लहलहाती हुई हरियाली आँखों को ठंढक पहुँचाती है। प्रासाद उत्तम रीति से सजाया गया था। दीवालों पर मनोहर चित्रकारी की गई थी और सारे महल में गैस की रोशनी का उचित प्रबंध था। सारे कमरें में बहुमूल्य मेज़, कुरसियाँ, अलमारी, कोच आदि उचित स्थानों पर कायदे से लगाए गए थे। फ़र्श पर नर्म ब्रसल्स का गलीचा बिछाया गया था और भाँति भाँति के शमादान, और ज्योतिशाखाओं से कमरों को सुसज्जित किया गया था।

उस दिन तो जंगबहादुर ने सौथैंपटन में पी. ओ कंपनी के मकान ही में आराम किया, दूसरे दिन अपने साथ के दस पाँच सर्दारों को लंडन नगर में यह देखने के लिये भेजा कि उनके ठहरने के लिये कहाँ और कैसे स्थान पर प्रबंध किया गया है। वे लोग उनके आज्ञानुसार लंडन गए और वहाँ सब कुछ देख भालकर सौथैंपटन में वापस आए और उन्होंने सब समाचार जंगबहादुर से निवेदन किया। अब जंगबहादुर अपने साथियों समेत सौथैंपटन नगर से प्रस्थानित हुए और वहाँ रिचमांड टेरेस में उन्होंने जा डेरा किया। महारानी उस समय प्रसूतागार में थीं, क्योंकि उस समय प्रिंस आर्थर (ड्यूक आफ़ कनाट) का जन्म हुआ था और इसी लिये वे उस समय

जंगबहादुर से नहीं मिल सकती थीं अतः जंगबहादुर को उनके दर्शन के लिये तीन सप्ताह तक ठहरना पड़ा।

२७ मई को तीसरे पहर इष्ट इंडिया कंपनी के चेयरमैन और डिप्टी चेयरमैन जंगबहादुर के पास मिलने आए और उन्होंने उनसे ३० मई को एक बजे से तीन बजे के बीच इंडिया आफ़िस में पदार्पण करने के लिये प्रार्थना की और कहा कि जिस दिन आप को सुभीता हो उस दिन लंडन टैवर्न में आप के भोज का प्रबंध किया जाय। जंगबहादुर ने उनकी प्रार्थना और निमंत्रण को स्वीकार कर उन्हें बिदा किया। रात को उन्होंने अपने भाई जगत्शमशेर और धीरशमशेर राना, तथा हेमदल सिद्धमन और मैकल्यूड साहेब को साथ ले सेंट जेम्स थियेटर का नाटक देखा।

दूसरे दिन सबेरे से ही चारों ओर से वहाँ के बड़े बड़े आदमियों के निमंत्रण और मिलने के लिये संदेशे आने लगे और उन्होंने सब का समुचित उत्तर देकर सब को संतुष्ट किया। २९ मई को वह इप्सम की घुड़दौड़ में अपने दल बल सहित पधारे और वहाँ नगर के अनेक बड़े आदमियों से उनका परिचय हुआ। यहाँ बैठे हुए उनसे एक रईस ने यह प्रश्न किया कि "आप बतलाइए कि घुड़दौड़ में कौन घोड़ा बाजी मारेगा ?" इस पर जंगबहादुर ने अपनी तीक्ष्ण बुद्धि से वाल्टिजेंट (Valtigent) नामक घोड़े को ताक कर संकेत किया और दैव वश वही घोड़ा घुड़दौड़ में अव्वल

निकला जिसे देख सब लोग उनकी बुद्धि की प्रशंसा करने लगे। यहाँ से उठते ही एक बैलूनबाज ने जंगबहादुर से किसी दिन अपनी बैलूनबाजी का तमाशा देखने के लिये प्रार्थना की जिसे उन्होंने स्वीकार कर लिया।

३० मई को १ बजे दिन को वे अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार इंडिया आफिस में पधारे। वहाँ के प्रधान (चेयरमैन) ने कार्य्यालय भवन के द्वार पर उनका स्वागत किया और उन्हें अपने साथ ऊपर के प्रासाद पर ले जाकर उच्च आसन पर बैठाया। यहाँ पर बोर्ड आफ़ डायरेकृर के प्रधान (चेयर-मैन) ने उनके स्वागत का अभिनंदन पत्र पढ़ा और उनके स्वास्थ्यपान के लिये प्रस्ताव किया और सब लोगों ने वहाँ बड़े आनंद और उत्साह के साथ नैपाल के सुयोग्य महामात्य का स्वास्थ्यपान किया। यहाँ से उठकर सब लोग पास के कमरे में पधारे। यहाँ डाइरेकृरों की ओर से उनके लिये फलाहार का प्रबंध हुआ था। जंगबहादुर ने कुछ फल खाए और उन लोगों के इस आतिथ्य सत्कार के लिये कृतज्ञता प्रकट की। तदनंतर उनसे विदा माँग वे अपने डेरे पर आए। सायंकाल के समय वे दलबल के साथ आपरा देखने के लिये पधारे और रात भर वहाँ तमाशा देखते रहे। दो दिन रात के जागरण से वे कुछ अनमने हो गए थे इसीलिए दूसरे दिन ३१ को वे कहीं न जा सके, अपने डेरे ही पर आराम करते रहे।

१ जून को वे गाड़ों के लिये घोड़े खरीदने कई जगह सौदागरों के यहाँ गए और उन्होंने तीन घोड़े अपनी गाड़ी के लिये छाँट कर खरीदे पर चौथा नहीं मिला, अंत को वे लांगनकर (Long Acre) में एक गाड़ी खरीदने के लिये गए। संयोगवश उक्त दूकान में कोई गाड़ी उन्हें पसंद नहीं आई, अतः धीरशमशेर को गाड़ी खरीदने के लिये दूसरा दूकानों में भेज वे डेरे पर वापस आए।

सायंकाल के समय जंगबहादुर श्रीमती लेडी पामरस्टन से मिलने गए। वहाँ संयोगवश ड्यूक आफ़ वेलिंगटन और यूनाइटेड स्टेट के एलची मि० लारेंस साहेब भी उपस्थित थे और श्रीमती पामरस्टन ने जंगबहादुर का परिचय उक्त महोदयों से कराया। श्रीमान् ड्यूक आफ़ वेलिंगटन ने परिचय पाने के समय हर्ष प्रगट करते हुए कहा कि यद्यपि भारतवर्ष में बहुत से लोगों से मेरा परिचय है, पर आज तक मुझे ऐसे प्रबंधकुशल राजनीतिज्ञ धीर वीर मंत्री से मिलने का सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ था। ऐसा सुयोग्य मंत्री पा कर नैपाल का भाग्य खुल गया। मुझे आशा है कि अब वह अच्छी उन्नति करेगा।

दूसरे दिन वे लार्ड गफ़ से मिलने गए। यहाँ लार्ड गफ़ से जंगबहादुर बहुत देर तक युद्धकौशल पर बात चीत करते रहे। बीच में लार्ड गफ़ ने उनसे उनके नाम का अर्थ पूछा जिस पर जंगबहादुर ने कहा कि जंगबहादुर शब्द का अर्थ है युद्ध में

बहादुर। लार्ड गफ़ ने उनके नाम के अर्थ को सुन बहुत प्रसन्न हो कहा कि आप का नाम आप के लिये सार्थक है। इस पर जंगबहादुर ने बरजस्ता यह उत्तर दिया, मेरा नाम तो मेरी वीरता का द्योतक है पर आप का नाम पंजाब विजय के कारण वीरता के लिये रूढ़ि हो गया है। जंगबहादुर की इस हाजिरजवाबी को सुन लार्ड गफ स्तब्ध हो गये और उनकी इस देवदत्त वाक्शक्ति की प्रशंसा करने लगे।

२ जून को जंगबहादुर स्वयं पिकाडली में घोड़ा खरीदने के लिये गए। यहाँ उन्हें एक सौदागर का घोड़ा पसंद आया। जंगबहादुर ने घोड़े का मोल पूछा तो उसने ३०० गिनी बतलाया। जंगबहादुर ने मोल को सुन मालिक से पूछा क्या घोड़ा उड़ान भी करता है? मालिक ने कहा यह घोड़ा रमना में रहा है और इसे उड़ने की शिक्षा नहीं दी गई है। जंगबहादुर ने आग्रह कर के कहा कि मैं इसे तलवार के ऊपर फँदाऊँगा। धीरशमशेर ने आज्ञा पाते ही तलवार निकाली और वह उसे उठा कर खड़ा हो गया। सौदागर बेचारा जंगबहादुर का यह हठ देख घबड़ाया। जंगबहादुर ने उसकी यह अवस्था देख कहा कि आप घबड़ाँय मत, यदि घोड़े के पैर में जरा भी घाव लगेगा तो मैं तुम्हें मुँहमाँगी ३०० गिनी देदूँगा। यह कह वे घोड़े की पीठ पर बैठ गए और पल मात्र में घोड़े को तड़का कर दूसरी ओर पहुँचे। यह देख सब लोग विस्मित हो गए और मालिक ने अपने घोड़े का जौहर देख उसका

मूल्य ३०० गिनी से ४०० गिनी कर दिया। जंगबहादुर ने अपने सिक्रेटरी मि० मैल्यूड साहेब से कहा कि आप इसे समझा दीजिए कि मैं उसे इसका मूल्य यहाँ से पचास कदम जाने तक २०० गिनी दूँगा और पचास कदम के बाद गाड़ी में पहुँचने तक १५० गिनी दूँगा और यदि गाड़ी में बैठ गया तो फिर १०० गिनी से अधिक न दूँगा। यह कह वे वहाँ से चलते हुए। घोड़े का मालिक उनके साथ साथ मूल्य पर झगड़ता हुआ चला। कोई बात तै न हो पाई थी कि जंगबहादुर गाड़ी में बैठ गए। अब तो मालिक चकराया कि बना सौदा उसकी अड़ से बिगड़ गया और गाड़ी चलते चलते वह १०० गिनी ही लेने पर राजी हो गया। जंगबहादुर ने उसे १०० गिनी देकर घोड़ा ले लिया और अंत को जब मालिक चलने लगा तो उसकी मानसिक अवस्था पर दया कर २५ गिनी और देने की आज्ञा दी।

उसी दिन सायंकाल के समय जंगबहादुर अंजेलिओ के प्रसिद्ध अखाड़े में कुश्ती देखने गए। यहाँ उन्होंने कई पहलवानों की कुश्तियाँ देखीं। पर जब पहलवानों को यह पता चला कि जंगबहादुर के साथ भी कई कुश्तीबाज नैपाली मल्ल आए हैं तो उन लोगों में से एक प्रसिद्ध मल्ल ने उन्हें कुश्ती के लिये प्रचारा। जंगबहादुर ने उसके प्रचार को स्वीकार किया और अपने छोटे भाई धीरशमशेर को अखाड़े में उतरने को आज्ञा दी। धीरशमशेर उनकी आज्ञा पाते ही अखाड़े में उतरा

और बात की बात में उसने उस मदोन्मत्त मल्ल को भूमि पर चित्त पटक दिया। चारों ओर से अखाड़ा करतलध्वनि से गूँज उठा। प्रतिद्वंदी का शरीर पटकनी खाने से धुस गया अतः जंगबहादुर ने उसकी इस अवस्था को देख और उस पर तरस खा एक मुट्ठी अशर्फियाँ उसे इनाम में दीं।

५ जून को जंगबहादुर ने मार्कुइस आफ़ लंडनडरी के निमंत्रण के अनुसार प्रातःकाल द्वितीय प्राणरक्षक सेना (Life guard) की कवायद को देखा और इसी दिन दोपहर के समय लार्ड हार्डिंज साहेब भारत के भूतपूर्व गवर्नर-जनरल उनसे मिलने के लिये आए। लार्ड हार्डिंज महोदय और जंगबहादुर में बड़ी देर तक युद्ध विद्या पर बात चीत होती रही और उक्त लार्ड उनसे इस विषय पर कि नैपाल में तोप और बंदूकें कैसे ढाली जाती हैं पूछताछ करते रहे। सायंकाल के समय जंगबहादुर होर्डरनेस हाउस में दलबल सहित एक भोज में जो वहाँ के सेना विभाग की ओर से दिया गया था गए। यहाँ पर उन्होंने ड्यूक आफ़ नारफ़क, सर राबर्ट पील और विलायत के अन्य प्रधान पुरुषों से परिचय प्राप्त किया। भोज की समाप्ति और उनके स्वथ्यपान हो चुकने पर वे अपने स्थान से उठे और समस्त उपस्थित सज्जनों को धन्यवाद देते हुए उन्होंने कहा कि आप लोग मुझे इस भोज में हाथ पर हाथ रक्खे बैठे रहने के लिये क्षमा कीजिए। भगवान् ने मुझे ऐसी जाति धर्म और देश में उत्पन्न किया है कि जिसकी प्रथा के

अनुसार मैं विदेशियों क्या अपने देश ही के कितने लोगों के साथ सहभोज करने से वंचित हूँ। मैं आप लोगों को आतिथ्य सत्कार के लिये अंतःकरण से धन्यवाद देता हूँ और सदा के लिये आपका कृतज्ञ हूँ।

दूसरे दिन सायंकाल के समय वे थैचड टैवर्न में पधारे। यहाँ स्काटिश कार्पोरेशन की ओर से जंगबहादुर के वहाँ पधारने के उपलक्ष में एक भोज दिया गया था और नाच का प्रबंध हुआ था। यहाँ पर स्वास्थ्यपान के अनंतर जंगबहादुर ने भोज में सम्मिलित न हो सकने पर अपनी अयोग्यता प्रकाश करते हुए स्काटलैंड के पहाड़ियों के साथ स्वयं भी पहाड़ी होने का संबंध जोड़ते हुए अत्यंत सहानुभूति प्रकाशित की।

७ तारीख़ को पूर्वाह्न में वे मिडलसेक्स का अस्पताल देखने के लिये गए। वहाँ प्रत्येक कमरे में घूमकर पाश्चात्य चिकित्सा प्रणाली, औषधप्रयोग, शस्त्रप्रयोग तथा रोगियों की शुश्रूषा आदि की प्रणालियों को उन्होंने बड़े ध्यानपूर्वक देखा। अपराह्न में वे पशुशालाओं में जहाँ गायों की बिक्री होती है गए, और एक स्थल में उन्होंने सफ़क की ६, होर्डरनेस की २ और यार्कशायर की ४ गाएँ तथा आल्डरनी के २ बैल खरीदे।

८ जून को जंगबहादुर बैंक आफ इंगलैंड में पधारे। वहाँ बैंक के गवर्नर सर जान लेथम ने उनकी बड़े स्वागतपूर्वक

अभ्यर्थना की और अपने साथ बैंक की कोठी के प्रत्येक विभाग को दिखलाय और अंत में वे उन्हें उस कार्य्यालय में ले गए जहाँ नोट बनाए जाते थे। वहाँ उन्होंने नोट बनाने की सारी परिक्रिया प्रणाली को विवरणपूर्वक समझाया। यहाँ से जंगबहादुर लार्ड रास के निवासस्थान पर गए।

दूसरे दिन प्रातःकाल ही जंगबहादुर के डेरे पर ड्यूक आफ़ वेलिंगटन उनसे मिलने के लिये आए और अपराह्न में जंगबहादुर उनसे मिलने के लिये उनके स्थान पर गए। यह सारा दिन डयूक आफ़ वेलिंगटन के आगमन और प्रत्यागमन में लगा। दूसरे दिन जंगबहादुर ने लंडन नगर की बड़ी बड़ी मान्य महिलाओं से मिलने में बिताया। ११ जून को वे कुछ बीमार हो गए, अतः उनकी चिकित्सा के लिये उस समय के प्रधान डाकृर सर वेंजिमन ब्रोडी साहब बुलाए गए जिनके अप्रतिम निदान और औषधि तथा शुश्रूषा से तीन चार ही दिन में वे फिर ज्यों के त्यों नीरोग और स्वस्थ हो गए। जंगबहादुर ने स्वास्थ्य लाभ करने पर सर वेंजिमन ब्रोडी महोदय को उनके अंतिम निरीक्षण के समय ५०० पौंड का खरीता उनकी फीस में प्रदान करना चाहा पर उक्त डाक्टर महोदय ने यह कह कर उसे वापस कर दिया कि उक्त धन उनकी फीस से कई गुना अधिक है। बड़ा आग्रह करने पर उन्होंने १०० पौंड स्वीकार किए।

१५ ता० को जंगबहादुर को ईस्ट इंडिया कंपनी के डाय-

रेक्टरों के अनुराध से लंडन टेवर्न में पधारना पड़ा। यहाँ डायरेक्टरों ने जंगबहादुर के शुभागमन के उपलक्ष में एक भोज देने का प्रबंध किया था और उसमें वहाँ के बड़े बड़े लार्डों और महिलाओं को आमंत्रित किया था। नैपालियों के लिये वहाँ पृथक दीवानख़ाने में फलों का प्रबंध हुआ था। यहाँ भोजनानंतर सब लोगों ने नैपाल राज्य की उन्नति मनाते हुए स्वास्थ्यपान किया और अंत में जंगबहादुर ने उन सब लोगों को थोड़े से शब्दों में धन्यवाद दिया जिस पर सब लोगों ने तालियाँ पीटकर खूब आनंद प्रकाशित किया।

दूसरे दिन जंगबहादुर लंडन नगर के प्रधान अजायबघर और चिड़ियाख़ाने को देखने के लिये गए और उन्होंने सारा दिन देश देश के पशु पक्षियों के देखने में बिताया।

१८ जून को वे लंडन नगर के सुप्रख्यात पुल को जो टेम्स नदी पर बना है देखने गए। इस प्रकार उन्होंने महारानी के प्रसूत-गृह-वास-काल को लंडन नगर के प्रसिद्ध प्रसिद्ध पुरुषों के मिलने और प्रसिद्ध स्थानों के देखने में बिताया। इतने ही अल्पकाल में वे वहाँ के सभ्यसमाज में इतने प्रख्यात हो गए कि चारों ओर लोग उनकी मिलनसारी हाज़िरजवाबी और सभाचातुरी की प्रशंसा करने लगे।

महारानी ने प्रसूतगृह से निकलने पर जंगबहादुर को १९ जून को ३ बजे के समय सेंट जेम्स नामक प्रासाद में भेंट करने के लिये बुलाया। जंगबहादुर नियत समय पर अपने

भाइयों जगत्‌शमशेर और धीरशमशेर तथा अन्य मुसाहबों समेत सेंट जेम्स में गए। यहाँ महारानी ने उन्हें अपने मिलने के कमरे में बुलाया। कमरे में उस समय महारानी के पति राजकुमार अल्बर्ट तथा मंत्रिमंडल के दो चार चुने हुए सभ्य उपस्थित थे। वहाँ महारानी ने जंगबहादुर का समुचित स्वागत किया। जंगबहादुर ने महारानी को देखते ही झुक कर फरशी सलाम किया और अपना ख़रीता जो वे नैपाल से महारानी के नाम लाए थे महारानी के कर कमलों में सादर समर्पण किया। महारानी ने धन्यवादपूर्वक खरीता स्वीकार किया और कहा "मुझे शोक है कि आपको इतने दिनों यहाँ ठहर कर प्रतीक्षा करनी पड़ी, पर किया क्या जाता, मैं स्वयं मजबूर थी और आप से इसके पूर्व नहीं मिल सकी। मुझे आशा है कि इंगलैंड में ठहरने में आपको किसी प्रकार का कष्ट न हुआ होगा।" जंगबहादुर ने प्रत्युत्तर में महारानी को धन्यवाद दिया और कहा "आपके प्रबंधकुशल कर्मचारियों के कारण मुझे सब प्रकार से सुख मिला और किसी प्रकार का कष्ट नहीं हुआ।" इसके अनंतर महारानी ने जंगबहादुर से मिलने पर अपनी प्रसन्नता और संतोष प्रकट किया और उनकी वीरता की बहुत प्रशंसा की, जिसके लिये जंगबहादुर ने उनको धन्यवाद दिया। इसके बाद सर जान हाबहाउस महोदय ने जंगबहादुर के दोनों भाइयों जगत्‌शमशेर और धीरशमशेर का परिचय महारानी को दिया

और जंगबहादुर ने उन सब तुहफ़ों को जो वे नैपाल राज्य की ओर से महारानी के लिये लाए थे एक एक कर के महारानी के सामने उपस्थित किया और महारानी ने एक एक को देख कर उन पर अपना संतोष और कृतज्ञता प्रकट की और उनके लिये नैपाल के महाराज और उनके प्रतिनिधि जंगबहादुर को धन्यवाद दिया। महारानी ने चलते समय जरनल बावेल को आज्ञा दी कि वे जंगबहादुर को सेंट जेम्स का महल अच्छी तरह दिखला दें। यह सारा दिन जंगबहादुर का महारानी से मिलने और उन्हें भेंट देने में ही बीत गया। वे सेंट जेम्स से निकल कर केवल ड्यूक आफ़ नारफ़ाक के स्थान पर जा सके और वहाँ से बड़ी रात गए लौटे।

दूसरे दिन महारानी ने उन्हें फिर मिलने के लिये बुलाया और वे अपने दलबल सहित बड़ी सजधज से महारानी से मिलने के लिये गए। महारानी इस बार उनसे उस दर्बार आम में मिलीं जहाँ वे सिंहासन पर बैठा करती थीं और जिसे सिंहासनागार कहते हैं। यहाँ महारानी ने जंगबहादुर को बड़े तपाक से प्रिंस आर्थर (ड्यूक आफ़ कनाट) के बपतस्मा में जो २२ तारीख़ को होनेवाला था निमंत्रित किया। २१ तारीख को जंगबहादुर ने अपना समय टेम्स नदी में कई खेल कूद देखने में बिताया और २२ को वे सजधज के साथ दर्बार में राजकुमार के बप्तिस्मा के सम्मिलित होने के लिये पधारे। महारानी ने उनका बड़े सम्मान से स्वागत किया और

उन्हें अपने पास ही बैठने को स्थान दिया। यहाँ महारानी ने उनका परिचय जर्मन के महाराज विलियम से जो उस समय राजकुमार थे कराया। महारानी उनसे बहुत देर तक नैपाल के जल वायु और अन्य प्राकृतिक दृश्यों के विषय में बराबर जब तक वे बैठे रहे पूछ पाछ करती रहीं। राजकुमार के बप्तिस्मा हो जाने पर उसके स्वाथ्य पीने का प्रबंध हुआ और नियमानुसार मद्यपूर्ण एक पानपात्र जंगबहादुर के हाथ में दिया गया। इस पानपात्र को जंगबहादुर ने लेकर कप्तान कवेना के आगे यह कह कर बढ़ा दिया कि हिंदुस्तान के नियमानुसार मैं महाराजाओं के सामने पान नहीं कर सकता। स्वास्थ्यपान के अनंतर संगीत प्रारंभ हुआ। वाद्य और गीति का माधुर्य्य जंगबहादुर को बहुत मनोहर मालूम हुआ और उन्होंने उस पर अपनी बड़ी प्रसन्नता प्रकट की। इस पर महारानी ने हँसते हँसते पूछा कि आप जब अंग्रेजी नहीं समझते तो आपको अंग्रेजी गीतों में आनंद कैसे आता है? इस पर जंगबहादुर ने हँस कर उत्तर दिया कि चिड़ियों की सुरीली बोलियाँ सुन कर भी तो मनुष्य उनका भाव न समझते हुए आनंदित होता है। स्वर का माधुर्य्य कर्णेंद्रिय का विषय है और भाव अंतःकरण का विषय है। अतः मैं कर्णेंद्रिय के स्वाद से आनंदित होता हूँ।

२४ जून को जंगबहादुर ने अपने डेरे रिचमांड टेरेस में विलायती मित्रों को भोज दिया जिसमें लंडन के अनेक बड़े बड़े

आदमी, राजकुमार और पार्लामेंट के सदस्य आमंत्रित किए गए थे। भोज का प्रबंध बहुत उत्तम रीति से किया गया था और उत्तम से उत्तम पदार्थ ढूँढ़कर मँगाए गए थे। इस दिन वे अपने डेरे ही पर रहकर नैपाल में मित्रों और संबंधियों को पत्र लिखते रहे और कहीं न जा सके, पर उनके दोनों भाई पार्लामेंट की बैठक में वहाँ के सदस्यों के वाद विवाद देखने के लिये पधारे और उन्होंने वहाँ की काररवाईयों को बड़े ध्यानपूर्वक देखा।

२५ जून को जंगबहादुर महारानी के पति राजकुमार प्रिंस अल्बर्ट से मिलने गए और उनके अनुरोध से उन्होंने अपनी संक्षिप्त जीवनी का वर्णन उनसे किया और उनके सामने उस भयंकर और न्यस्त व्यस्त पूर्वीय राजनैतिक अवस्था का चित्र खींच कर दिखाया जिसमें पूर्वीय शक्तिशाली पुरुषों को रहकर अपना जीवन व्यतीत करना पड़ता है।

२६ जून को महारानी ने उन्हें स्टेट बाल में निमंत्रित किया। बाल का नाच हो चुकने पर महारानी ने जंगबहादुर से अपने साथ भोजन करने की प्रार्थना की, पर जंगबहादुर ने उनको धन्यवाद देते हुए स्पष्ट शब्दों में निवेदन किया कि मैं हिंदू हूँ और हिंदू जाति और धर्म के नियमानुसार मैं विदेशी क्या कितने अपने ही देशवाले कुलीन पुरुषों के हाथ का खाना नहीं खा सकता और स्वयं अपना खाना भी चौके के बाहर नहीं खा सकता। अतः मैं श्रीमती से प्रार्थना करता हूँ कि

आप मुझे क्षमा कीजिए। महारानी जंगबहादुर के इस स्पष्ट वादित्व पर बहुत प्रसन्न हुईं और उनके स्वजाति और स्वधर्म प्रेम की प्रशंसा करने लगीं।

२७ जून को जंगबहादुर ने सुना कि किसी पागल* ने महारानी के ऊपर कैंब्रिज हाउस से पलटते समय आक्रमण किया है और उनके कुछ चोट आगई है। यह सुन जंगबहादुर उसी क्षण श्रीमती की सेवा में उन्हें देखने और उनके साथ सहानुभूति प्रगट करने के लिये उपस्थित हुए। महारानी के साथ सहानुभूति प्रगट करने के बाद उन्होंने कहा कि उस पागल का श्रीमती राजराजेश्वरी के ऊपर आक्रमण करने के अपराध में सिर मार देना चाहिए और इस बात का कुछ भी विचार न होना चाहिए कि वह पागल है। इस पर श्रीमती ने उनकी इस हार्दिक सहानुभूति के लिये धन्यवाद देते हुए कहा कि ईश्वर का धन्यवाद है कि मुझे विशेष चोट नहीं लगी और उस पागल को हमारे राजनियमानुसार

* यह पागल वही लेफ़्टनेंट पेट था जो सेना में अपनी नौकरी से बर्खास्त कर दिया गया था। इसी कारण सर्कार का परम विरोधी हो गया था। उन दिनों महारानी के चचा ड्यूक आफ़ कैंब्रिज बीमार थे और महारानी उस दिन अपने चचा को देखने के लिये कैंब्रिज हाउस में पधारी थीं। वे उन्हे देखकर वापस आ रही थीं कि राह में पागल पेट ने सामने से दौड़कर उन पर लाठी से आक्रमण किया। लाठी महारानी के सिर में लगी और उसके आघात से उनकी टोपी का छज्जा और बानेट टूट गया पर दैववश चोट हलकी लगी। पुलिस ने अपराधी को फौरन पकड़ कर चलान कर दिया और अदालत से उसे सात वर्ष के लिये देश निकाले का दंड मिला।

न्यायालय से सात वर्ष के लिये देशनिकाले का दंड मिल गया है।

२८ जून को जंगबहादुर लंडन से उलविच नगर को रवाना हुए। यहाँ मार्किस आफ़ अंग्लेसी, प्रिंस अल्वर्ट, कैंब्रिज के प्रिंस जार्ज और रूस के ग्रैंड ड्यूक ने उनका स्वागत किया। दो हज़ार पदाति और छः रिसाले तोपखाने की कवायद उन्हें दिखाई गई और तदुपरांत वे गोला बारूद की कोठी देखने गए जहाँ उन्होंने टोपियों और कारतूसों इत्यादि का बनना बड़े कुतूहल से देखा।

दो दिन बाद १ जूलाई को प्रातःकाल वे ड्यूक आफ़ वेलिंगटन से मिलने के लिये उनके निवास स्थान पर जो ऐशली हाउस (Ashley House) कहलाता था, पधारे। ड्यूक आफ़ वेलिंगटन महोदय ने उनका उचित सम्मान पूर्वक स्वागत किया और बड़ी देर दोनों महानुभावों में नैपाल तथा अंग्रेजी राज्य की प्रबंधप्रणाली के विषय में बात चीत होती रही। इसके बाद ड्यूक आफ़ वेलिंगटन जंगबहादुर को अपनी एक बैठक में ले गए जहाँ युरोप के अनेक प्रसिद्ध पुरुषों की तस्वीरें लगी हुई थीं। वहाँ उन्होंने जंगबहादुर को प्रसिद्ध वीर विजयी नैपोलियन की प्रतिकृति दिखलाई और उसकी प्रशंसा करते हुए कहा कि इसी वीर पुरुष को इस व्यक्ति (मैं) ने वाटरलू की लड़ाई में पराजित किया था। वहाँ से पलट कर वे अपने वास स्थान पर आए और दूसरे समय अपराह्न में महा-

रानी से मिलने के लिये हालैंड पार्क में गए। महारानी ने वहाँ मिलने पर उनसे आग्रहपूर्वक कहा कि आज सायंकाल को यहाँ कंसर्ट है, आप अपने भाइयों समेत अवश्य पधारिएगा। अतः जंगबहादुर ने सायंकाल के समय कंसर्ट का भी आनंद लिया।

दूसरे दिन से वे अपने देश लौटने की तैयारी करने लगे और लंडन में इस दिन उन्होंने कई कास्सोल्ड की गायें और लीस्टर की भेड़ियाँ और तीन जोड़े शिकारी कुत्ते (ब्लडहाउंड) खरीदे। दूसरे दिन लेवी दर्बार हुआ। ४, ५ जूलाई को वे आवश्यक चीज खरीदते रहे और तेल निकालने की कल और उसके लिये एक इंजन भी उन्होंने खरीदा। ६ जूलाई को वे लार्ड आल्फ्रेड पेगेट के साथ टेम्स नदी में नौकाओं की दौड़ देखते रहे। दुर्भाग्यवश इसी दिन उनके भाई जगत्‌शमशेरजंग रात को आपरा देख कर आरहे थे कि वे घोड़े पर से गिर पड़े। जगत्‌शमशेर के गिर पड़ने के कारण जंगबहादुर तीन दिन तक कहीं न जासके और उनकी सेवा सुश्रूषा में लगे रहे। इसी समय जंगबहादुर को महारानी के पितृव्य ड्यूक आफ़ कैंब्रिज के स्वर्गवास का समाचार मिला जिसके लिये उन्होंने महारानी के पास शोक-प्रकाशन--पूर्वक सहानुभूति का पत्र भेज दिया।

जगत्‌शमशेर के अच्छे हो जाने पर वे १० जूलाई को फिर उलविच नगर को गए और वहाँ जाकर उन्होंने फिर मेगज़ीन

के करख़ाने और गोदाम तथा शस्त्रागार को ध्यानपूर्वक देखा। दूसरे दिन ११ जूलाई को उन्होंने सेंट पाल केथीड्रल नामक लंडन के प्रसिद्ध गिर्जाघर को और टावर को देखा। फिर २१ और २२ जूलाई को वे वहाँ के प्रसिद्ध प्रसिद्ध स्थानों को देखते रहे। २३ को एक दफा फिर वे उलविच नगर गए और वहाँ के कारखानों का उन्होंने तीसरी बार निरीक्षण किया जिससे यह स्पष्ट है कि उनके चित पर उलविच के शस्त्रास्त्र के कारखानों का कहाँ तक प्रभाव पड़ा था। वे वीर और अनुभवी पुरुष थे और अच्छे प्रकार समझते थे कि किसी देश की शस्त्रास्त्र में श्रेष्ठता उसे कहाँ तक शक्तिसंपन्न बना सकती है।

२४ जूलाई को पी. ओ. कंपनी की ओर से जंगबहादुर के शुभागमन के उद्देश से एक बाल का नाच हुआ जिसमें उनके इंगलैंड पधारने के विषय में थैकरी का बनाया हुआ गीत सब लोगों ने मिलकर गाया।

२५ और २६ जूलाई को जंगबहादुर ने फिर अपने इष्ट-मित्रों को बड़े समारोह के साथ भोज दिया। तीन दिन ठहर कर २९ जूलाई को वे लंडन नगर से प्लीमथ नगर को गए। यहाँ ऐडमिरल लार्ड जान हे ने उनका उचित स्वागत किया और बंदर के पास उनके ठहरने का प्रबंध किया। यहाँ ठहर कर वे दूसरे दिन अनेक सैनिक और सामुद्रिक कर्मचारियों से मिले और अपराह्न में लार्ड हे के साथ उन्होंने वहाँ के प्रसिद्ध जहाज़ों के कारखानों को देखा। ३१ जूलाई को वे वहाँ की खान

में गए और खान के भीतर उतर कर उन्होंने खोदाई आदि के कामों को देखा। १ अगस्त को वे सीमाथ से अपने साथियों समेत बरमिंघम को गए और उस नगर के पीतल लोहे के प्रसिद्ध कार-खानों को उन्होंने देखा। फिर वहाँ के क़लईगरी के कारख़ाने में जाकर बिजलीद्वारा कलई करने के काम को उन्होंने देखा। उसी दिन सायंकाल की गाड़ी से वे लंडन लौट आए और रात को एक थियेटर का तमासा देखने के लिये, जिसे उन्होंने स्वयं कराया था, गये। कई दिन लगातार फिरने और रात को जागने के कारण उनकी तबियत कुछ ख़राब हो गई इस लिये उन्हें बीमार हो कर चार पाँच दिन लंडन ही में रहना पड़ा। ६ अगस्त को सायंकाल के समय वे लंडन से एडिनबरा को रवाना हुए। वहाँ दूसरे दिन ७ अगस्त को वे पहुँच गए। स्टेशन पर उतर-ते ही वहाँ की सेना के प्रधान सेनापति लार्ड प्रोवोस्ट (Lord Provost) ने देशिक और सैनिक अफ़सरों के साथ उनका स्वागत किया। ९३ हाइलैंडर सेना ने उनके सामने अपने शस्त्र अर्पण किए और तोपों से उनकी सलामी दी। स्टेशन से सब लोग उन्हें बड़े गाजे बाजे से लेकर नगर में होते हुए उस स्थान पर गए जहाँ पर राज्य की ओर से उनके ठहरने का प्रबंध हुआ था। दूसरे दिन जंगबहादुर वहाँ के प्रधान पुरुषों और महिलाओं से मिले तथा उन्होंने वहाँ के मुख्य मुख्य स्थानों और संस्थाओं तथा होलीरुड के राजभवन, कालेज आफ़ सर्जंस, विश्वविद्यालय, अजायबघर, दुर्ग इत्यादि को

देखा। तीसरे दिन उन्होंने हाइलैंडर सेना की कवायद देखी। फिर वहाँ से ग्लासगो, लैंकशायर, लिवरपूल और मैनचेस्टर होते हुए वे लंडन लौट आए। इस सफ़र में उन्हें दो सप्ताह से अधिक लगे। लंडन पहुँचने पर वे दो दिन ठहर कर महारानी के पास बिदा माँगने के लिये पधारे। महारानी ने राजमहल के प्रधान मंडप में लार्डों और लेडियों के साथ उनका स्वागत किया और बिदा करते समय श्रीमती ने अपने मुख से कहा कि "श्रीमान् के इंगलैंड आने से दोनों राज्यों के बीच घनिष्ट मैत्री स्थापित हुई। मुझे आशा है कि आप मुझे नैपाल और इंगलैंड के राज्यों के बीच परस्पर सहानुभूति और एकता का संबंध सत्य और चिरस्थायी करनेमें सहायता देंगे।" जंगबहादुर ने इसके उत्तर में कहा कि "श्रीमती विश्वास रक्खें कि समय पर आवश्यकता पड़ने पर मेरे देश की सेना और कोष सदा आपकी सेवा में प्रस्तुत रहेगा। मुझे दृढ़ विश्वास है कि इंगलैंड मेरे देश के प्रति सदा समान सहानुभूति और मैत्री भाव रक्खेगा और उसमें किसी प्रकार की न्यूनता न होने देगा।" महारानी ने उनके बिदा होते समय उनके वियोग पर दुःख प्रकाश किया। जंगबहादुर ने उनको धन्यवाद दिया और कहा कि "आपके देश में लोगों ने मेरा जो आदर और सत्कार किया है उसके लिये मैं आप का सदा के लिये कृतज्ञ हूँ"। यह कह कर जंगबहादुर महारानी से बिदा हुए।

२१—जंगबहादुर फ्रांस में।

लंडन नगर के आपने इष्ट मित्रों से विदा होकर जंगबहादुर अपने साथियों समेत वहाँ से २१ अगस्त को जहाज पर सवार होकर फ्राँस को प्रस्थानित हुए। उस देश के बंदर (पोर्ट) में पहुँच कर वे रेल पर सवार हुए और फ्राँस की राजधानी पेरिस में पहुँचे। फ्राँस के राज्य की ओर से उनके स्वागत का उचित प्रबंध किया गया था और वहाँ के प्रधान प्रधान अधिकारी वर्ग उनके लेने के लिये गाड़ी आने के पहले ही रेल के स्टेशन पर उनकी अगवानी के लिये उपस्थित थे। सब लोगों ने उनका बड़े समारोह के साथ स्वागत किया और उनको लाकर पेरिस नगर के होटल-सिनेट में ठहराया। यहाँ उनके ठहरने के लिये फ्राँस की सर्कार की ओर से प्रबंध हुआ था।

२३ अगस्त को मि० एडवर्ड (अंग्रेजी सर्कार के दूत जो इस समय फ्राँस के दर्बार में रहते थे) जंगबहादुर के डेरे पर उस आज्ञा के अनुसार जो उन्हें लंडन नगर से मिली थी, आए और उन्होंने उनसे पूछा कि यदि आप को यहाँ इस यात्रा में किसी प्रकार की सहायता की आवश्यकता हो तो मैं उसे देने के लिये उद्यत हूँ।

२४ अगस्त को फ्रांस की प्रजातंत्र राज्यसभा के सभापति तृतीय नेपोलियन के भतीजे चार्ल्स बोनापार्ट जंगबहादुर के पास होटल सिनेट में आए और उन्होंने उनको अपने साथ ले जाकर वहाँ के प्रधान स्थान टूलरीज़, कैंप्स इलसी, शस्त्रागार और मेगजीन दिखलाए। दूसरे दिन वे नेपोलियन बोनापार्ट के वृहत् स्तंभ और चाँदमारी को देखने गए। वहाँ उन्होंने अपना कर्तब भी दिखाया। एक ढाल के किनारे बहुत से सिक्के लगाए गए और जंगबहादुर ने बड़ी कुशलता से एक एक कर के सब को उतार लिया और इस सफ़ाई से निशाना लगाया कि लक्ष्य सिक्के को छोड़ दूसरे आस पास के सिक्कों में धक्का तक न लगा। उनकी इस हाथ की सफ़ाई और अचूक लक्ष्यभेदता को देख वहाँ के बड़े बड़े निशानेबाजों के छक्के छूट गए। २७ को तुर्की का राजदूत उनसे मिलने आया और वे भी उससे उसी दिन मिलने के लिये उसके वासस्थान पर गए।

३० अगस्त को फ्राँस के प्रजातंत्र राज्य के सभापति ने उनको मिलने के लिये बुलाया और नियत समय पर उनको लाने के लिये गार्ड आफ़ आनर को होटल सिनेट में भेजा, जो जंगबहादुर को उनके साथियों समेत बड़े आदर से सभापति के भवन को ले गए। भवन के द्वार पर प्रिंस लुई नेपोलियन ने जंगबहादुर का स्वागत किया और उनसे हाथ मिला अपने साथ दीवान-आम में ले जाकर उन्हें अपने पास आसन देकर

बैठाया। दीवान-आम में उस समय प्रजातंत्र राजसभा के ३५० सभ्य उपस्थित थे जिनमें से प्रधान प्रधान लोगों का परिचय सभापति ने जंगबहादुर को दिया और जंगबहादुर ने अपने साथियों में से चुने हुए लोगों का परिचय सभापति को प्रदान किया। परस्पर कुशल प्रश्नांतर सभापति ने कहा कि अब तक हम यही सुना करते थे कि नैपाली लोग हिंदुस्तान में हिमालय पर्वत की एक लड़ाकू पहाड़ी जाति के हैं पर आज तक हम लोगों को नैपोलियों के देखने का सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ था। यह बड़े आनंद की बात है कि आज हम अपने सामने एक ऐसे आदमी को देखते हैं जो नैपाल के सभ्य समाज का एक नमूना है। जंगबहादुर ने सभापति को धन्यवाद दिया और कहा कि आज मैं अपने उस आनंद को प्रगट करने के लिये कोई शब्द नहीं पाता जो मुझे आप जैसे फ्राँस जाति के प्रधान से मिलने से प्राप्त हुआ है। सभापति ने जंगबहादुर की आज्ञा इस विषय पर माँगी कि आप के शुभागमन के उपलक्ष में बाल का नाच किया जाय, पर जंगबहादुर ने उनसे उत्तर में कहा कि आप के और आप के देशवालों के अनुग्रह से मैंने बहुत नाच देखा है और मेरी नाच देखने की इच्छा पूरी हो गई है। यदि यही आप की इच्छा है तो आप फ्राँस की एक लाख सेना के जायजा और कवायद दिखलाने का प्रबंध कीजिए। सभापति ने कहा कि मैं शरवरी जाता हूँ। वहाँ से लौटने पर सेना के जायजा और कवा-

यद करने का प्रबंध करूँगा। दूसरे दिन उन्होंने होटल डि इनवैलिड में वृद्ध नैपोलियन की समाधि को जनरल पेटिट के साथ जाकर देखा। समाधि स्थान में लोगों ने समाधि पर से एक माला उतार कर जंगबहादुर को अर्पण की जिसे जंगबहादुर ने बड़े हर्ष से यह कह कर ले लिया कि मैं इसे संसार के प्रसिद्ध वीर शासक के समाधि दर्शन का चिह्नरूप अपने पास सुरक्षित रक्खूँगा। उसी दिन वे वृद्ध बोनापार्ट के भाई जेरोमी बोनापार्ट से मिले और जेरोमी ने अपने स्वर्गीय भाई के अनेक चिह्न स्मारक स्वरूप उन्हें दिखाए। जंगबहादुर ने उस वीर पुरुष की प्रशंसा करते हुए जेरोमी को धन्यवाद दिया।

पहिली सितंबर को जंगबहादुर ने वेंडम कालम् को देखा और दूसरी को वे आर्च आफ़ ट्रायंफ (विजयद्वार) देखने गए। इसके बाद वे १६ सितंबर तक चर्च आफ़ मडलीन, शेट्ट डि शंपीन, सर्कस, फाउंटेनब्लोर, इत्यादि पेरिस नगर और उसके आस पास के स्थानों को देखते रहे। १७ को वे ली वायोलन डू डायबुल (Le Violon du Diable) में बैलेट नामक ऐतिहासिक नाट्य देखने पधारे और वहाँ शेरीटो नामक प्रसिद्ध नर्तकी के नृत्य से प्रसन्न होकर उन्होंने उसे एक जड़ाऊ कंकड़ पारितोषिक में दिया। १८ सितंबर को वे एक पार्टी में पधारे जिसे ब्रिटिश राजदूत लार्ड नार्मन बे ने जो

उनके पेरिस में आने के समय छुट्टी पर गए थे उनके आगमन के उपलक्ष में दिया था।

२० सितंबर को वे पेरिस से फ्रांस के अत्यंत प्रसिद्ध स्थान वारसेल्स को जहाँ सन् १७८६ में सर्वसाधारण ने फ्रांस के प्रसिद्ध राजनैतिक परिवर्तन के समय आक्रमण किया था और वहाँ के सम्राट को बंदी करके प्रजातंत्र राज्य स्थापन किया था देखने गए और दूसरे दिन सेंट क्लाउड में जाकर वहाँ के राजप्रासाद को देखा जहाँ सन् १७९९ में नैपोलियन ने पाँच सौ सभ्यों की सभा को ध्वंस कर और स्वयं फ्राँस का कनसल बनकर समस्त राजकीय अधिकारों को अपने हाथ में लिया था। २३ सितंबर को वे लूवरी के अजायब घर को देखने गए और २४ को वहाँ के सभापति ने उन्हें सेना का जायजा और कवायद देखने के लिये वारसेल्स में बुलाया। क़वायद के लिये वारसेल्स के पास बहुत उत्तम प्रबंध किया गया था और बड़े समारोह से नियमानुसार सेना की कवायद उन्हें दिखलाई गई। क़वायद हो चुकने पर सभापति प्रिंस लुई और जंगबहादुर साथ साथ घोड़े पर सवार होकर वारसेल्स में पधारे। राह में सभापति ने जंगबहादुर से पूछा कि अब आप युरोप के किसी और राज्य में पधारेंगे अथवा सीधे नैपाल वापस जाँयगे। इन्होंने कहा कि यद्यपि मेरा विचार रूस और जर्मन देशों के देखने का है, पर राज्य का कारोबार इतना अधिक है कि अब मैं अन्य देशों को नहीं देख सकता और

सीधे नैपाल को वापस जाऊँगा। रास्ते भर दोनों महानुभावों में नैपाल, फ्रांस, इंगलैंड आदि देशों के विषय में बराबर बातचीत होती रही। वारसेल्स पहुँचकर सभापति ने उन्हें एक प्राचीन तमग़ा उपहार में दिया और जंगबहादुर ने अपना चित्र सभापति की भेट किया।

२५ सितंबर को जंगबहादुर जगतशमशेर धीरशमशेर और सिद्धमन को साथ ले नार्डन मोविली देखने के लिये पधारे। यहाँ वे अपने तमंचे से निशाना लगा रहे थे कि इसी बीच में एक लड़की उनके पास आई और हँस कर कहने लगी कि मैं भी आप की तरह निशाना लगा सकती हूँ। जंगबहादुर ने उसके मुँह से यह बात निकलते देर नहीं हुई थी कि अपना भरा हुआ तमंचा उसके हाथ में यह कह कर दे दिया कि लो निशाना लगाओ तो सही। लड़की घबड़ा गई और उसने तमंचे के घोड़े को बिना निशाना साधे ही खींच लिया। तमंचा दग गया और गोली धीरशमशेर की जाँघ में जो सामने पास ही खड़े थे जा लगी। लोगों ने चटपट धीरशमशेर को उठा लिया और सब लोग उन्हें लिए पेरिस आए। वहाँ जंगबहादुर ने स्वयं अपने हाथ से चिकित्सा के शस्त्रों से उनकी जांघ से गोली निकाली और मरहम पट्टी की।

धीरशमशेर के चंगे हो जाने पर सब लोग पेरिस नगर से लियंस में आए। यहाँ वे ३ अक्तूबर को प्रातःकाल पहुँचे। लियंस में जरनल काउंट कैस्टलेन की ओर से काउंट आफ़

ग्रैमांट ने उन्हें कृत्रिम संग्राम देखने के लिये आमंत्रित किया, जिसे जंगबहादुर ने सहर्ष स्वीकार किया। इस कृत्रिम संग्राम के देखने में उनका सारा दिन लगा और वे उस वीरोचित कृत्य को देख कर बहुत प्रसन्न हुए और जरनल काउंट कैस्टलेन को उन्होंने बहुत धन्यवाद दिया। लियंस से चलकर वे मारसेल्स बंदर पर पहुँचे। यहाँ सरकारी जहाज ग्राउंडर उनके लिये तैयार खड़ा था और वे उस पर सवार हो कर असकंदरिया को रवाना हुए।

२२—युरोप से लौटना।

मारसेल्स से चलकर जंगबहादुर १५ अक्तूबर को अस-कंदरिया के बंदर में पहुँचे। यहाँ वे जहाज से उतर कर स्थल मार्ग से चल कर तीसरे दिन मिश्र देश की राजधानी काहरा में आए। काहरा में अब्बास पाशा की ओर से उनके ठहरने के लिये उचित प्रबंध किया गया था और उन्हें राजकीय महल में ठहराया गया। दोपहर को पाशा स्वयं जंगबहादुर से मिलने आए और उनकी यात्रा का सारा विवरण बड़ी उत्सुकता से उन्होंने सुना। दूसरे दिन १६ को जंगबहादुर पाशा से मिलने गए और पाशा मिश्र के प्रधान प्रधान अमीर उमरा के साथ उनसे दर्बार-आम में मिले। २० अक्तूबर को जंगबहादुर काहरा से रवाना हुए और बंदरगाह में जहाज पर सवार हो बंबई को चल दिए।

जंगबहादुर ६ नवंबर को बंबई पहुँचे। यहाँ सर्कार अंग्रेजी की ओर से उनके स्वागत का उचित प्रबंध किया गया था। बंदरगाह के फाटक पर एक रेजिमेंट सेना खड़ी थी जिसने उतरते ही उनके सामने हथियार भेंट किए और तोपों से उनकी सलामी की। सब लोगों ने उन्हें ले जाकर उचित स्थान में ठहराया। यहाँ जंगबहादुर ने दो दिन तक विश्राम कर के

यात्रा की थकावट मिटाई। ८ नवंबर को सर विलय यर्डली ने तथा ६ को सर एर्सकिन साहेब ने उनके उद्देश से वाल के नाच का प्रबंध किया और उन लोगों के अनुरोध से उन्हें उन नाचों में जाना पड़ा। बंबई में पाँच छ दिन ठहर कर वे १४ नवंबर को द्वारिका पधारे। सर्कार अंग्रेज की ओर से उनकी द्वारिका यात्रा के लिये अटलांटा नाम के जहाज का प्रबंध किया गया था। वहाँ जंगबहादुर ने पांच हजार रुपए का सर्कारी प्रामिसरी नोट मंदिर में अर्पण किया। द्वारिका जी में दर्शन कर वे २१ को फिर बंबई वापस आए और दो दिन ठहर कर लंका को रवाना हुए। २६ नवंबर को वे कोलंबो पहुँचे। वहाँ लंका के गवर्नर सर जार्ज अंडरसन ने उनका उचित स्वागत किया। यहाँ ठहर कर वे ३ दिसंबर को रामेश्वर के दर्शन के लिये रामेश्वरनाथ गए और वहाँ भी उन्होंने पाँच हजार का प्रामेसरी नोट मंदिर में चढ़ाया। ६ दिसंबर को वे कोलंबो लौट गए। यहाँ वे अनेक अंग्रेज कर्मचारियों से मिले और लार्ड ग्रोस्वेनर, मि० लारेंस आलिफंट और कप्तान इगर्टन आदि को अपने साथ नैपाल में खेदा देखाने के लिये लेकर ७ दिसंबर को कलकत्ते को रवाना हुए।

जहाज लंका से चलकर १६ दिसंबर को कलकत्ते पहुँचा। जंगबहादुर जहाज से उतर कर बेलगछिया में ठहरे और दो एक दिन के बाद गवरनर-जनरल से मिलकर २५ दिसंबर को वे स्थल मार्ग से बनारस को प्रस्थानित हुए।

बनारस में नैपाल से उनकी अगवानी के लिये एक रेजिमेंट सेना पहले ही से भेजी गई थी जो वहाँ उनके शुभागमन की प्रतीक्षा कर रही थी। जंगबहादुर अपने दल बल सहित ४ जनवरी सन् १८५१ को काशी पहुँचे और सेना ने बड़े उत्साह और हर्ष से उनका स्वागत किया। दूसरे दिन उन्होंने गंगा में स्नान कर विश्वनाथ जी का दर्शन किया और एक सप्ताह तक काशीपुरी में रह कर अनेक देवस्थानों के दर्शन किए। काशी में ८ जनवरी को राजकुमार रणेंद्रविक्रम अपने भाई समेत उन के पास आए और बोले कि महाराज राजेंद्रविक्रमशाह जब हम लोगों को लेकर महारानी के साथ काशी आए थे तो वे अपना रुपया गवर्नर जनरल के एजंट की मार्फत सर्कारी खजाने में जमा कर गए थे। अब उसी रुपए के लिये हम लोगों और हमारी माता महारानी लक्ष्मीदेवी के बीच बैर विरोध मचा है। अच्छा होता कि आप हम लोगों के झगड़े का निपटेरा कर देते। जंगबहादुर ने उन राजकुमारों की बात सुन सारे धन के तीन भाग कर एक एक भाग दोनों राजकुमारों को और एक भाग महारानी को दिलाया और सब लोगों ने उनके इस निपटेरे को मान लिया। इसके बाद काशी छोड़ने के पहलेही वे एक दिन क्वीन्स कालेज बनारस में पधारे। उस समय कालिज में प्रसिद्ध डाक्टर वैलेंटाइन साहेब प्रिंसिपल थे। उन्होंने जंगबहादुर की कालिज में उचित अभ्यर्थना की और संक्षेप में कालिज का इतिहास उनसे

वर्णन किया और उन्हें कालेज के भवन के प्रत्येक भाग को ले जाकर दिखलाया। जंगबहादुर ने चलते समय डाक्टर बैलेंटाइन महोदय को धन्यवाद दिया और चार हजार रुपए कालेज की सहायता के लिये प्रदान किए।

काशी से चलकर वे ग़ाज़ीपुर पहुँचे। यहाँ उनको खबर मिली कि उन के पूर्व वैरी गुरुप्रसाद चौतुरिया ने उनके मारने के लिये तीन हथियारबंद बदमाशों को भेजा है। ग़ाज़ीपुर के सर्कारी कर्मचारी यह समाचार सुन बड़े चिंतित हुए और उन्होंने उनकी रक्षा के लिये उसी दम सैनिकों को नियुक्त कर दिया तथा पुलिस के नाम हुकुम जारी किया कि "जो नैपाली हथियारबंद अपने पास हथियार रखने और इस ओर आने का कोई युक्तियुक्त समाधान न दे सके उसको फौरन बाँध कर चालान कर दिया जाय।"

गाज़ीपुर से चलकर जंगबहादुर गंडकी पार कर २६ जनवरी को नैपाल की सीमा के भीतर पहुँचे और उन्होंने बिसौलिया में डेरा किया। यहाँ दो रेजिमेंट सेना लेकर उनके भाई जरनल कृष्णबहादुर काठमाँडव से आकर उन से मिले। दूसरे दिन प्रातःकाल जंगबहादुर ने सौ हाथियों को लेकर जंगल में शिकार के लिये हकवा कराया और एक बाघ मारा। सायंकाल के समय उन्होंने खेदे में पकड़े हुए हाथियों की पंजनी (परिगणना) की और अच्छे अच्छे हाथियों का नामकरण कर और हथिसाल में भेज शेष को बेचने की आज्ञा दी तथा

महावतों और खेदा के शिकारियों को उन के परिश्रम के अनुसार पुरस्कार प्रदान किया।

विसौली से चलकर जंगबहादुर ने पहली फर्वरी को मिचखोरी में पड़ाव किया और दूसरी को वे हिरौरा में पहुँचे। हिरौरा में उन्हें खबर मिली कि पड़ोस में जंगली हाथियों का एक झुँड़ फिर रहा है। यह खबर पाते ही उन्होंने उसी दम शिकारियों को बुलाकर शिकारी हाथियों को लेकर उनका पीछा किया और बड़ी लड़ झगड़ से चार हाथियों को उसी दिन पकड़ा। इस खेदे में मि० आलिफेंट जिन्हे वे लंका से साथ लाए थे और कप्तान कैवेना भी उनके साथ थे। वे दोनों इस खेदे को देखकर अत्यंत प्रसन्न हुए।

४ फर्वरी को पड़ाव उखड़ा। जंगबहादुर ने लार्ड ग्रोस्वेनर, मि० लाक, और मिस्टर इगर्टन को जो नैपाल में हाथियों का खेदा देखने गए थे विदा किया और शिकार खेलते हुए वे ६ फर्वरी को प्रातःकाल थापाथाली पहुँच गए।

उनके पहुँचने पर काठमांडव में बड़ा उत्सव मनाया गया। कालामट्टी के पुल से दर्बार तक की सड़क के चारों ओर झंडियाँ और तोरण आदि लगाए गए। पुल के पास एक मंडप बनाया गया और यहाँ सब लोगों ने उनका उचित स्वागत किया। सैनिकों ने उनके सामने शस्त्र अर्पण किए और तोपों से उनकी सलामी की। सैनिक और देशिक अधिकारी वर्गों ने तथा नगर के बड़े बड़े रईसों ने मिलकर उनके शुभागमन के

उपलक्ष में उन्हें अभिनंदनपत्र दिया। फिर वहाँ से बड़े बाजे गाजे से वे बड़े बड़े प्रधान अफ़सरों के साथ नगर में पधारे। सड़क के दोनों ओर सैनिक खड़े उनके सामने शस्त्र अर्पण करते थे और नगर के लोग अपने अपने कोठों से उन पर फूल और रोरी की वर्षा करते थे। उनके देश में लौटने पर सब छोटे बड़ों ने उत्साह प्रगट किया और दूर दूर से लोग उन्हें देखने के लिये आए। ब्राह्मणों को बहुत कुछ दान दक्षिणा दी गई और नगर भर में बड़ा उत्सव मनाया गया।

७ फर्वरी को वे अपने इष्ट मित्रों और राज्य के बड़े बड़े प्रधान देशिक और सैनिक कर्मचारियों से अपने स्थान पर मिलते रहे।

८ को वे महाराज के राजभवन में महारानी विक्टोरिया का पत्र लेकर पधारे और सरे दर्बार उन्होंने महारानी का पत्र महाराजाधिराज के हाथों में अर्पण किया। इस समय २१ तोपों की सलामी पत्र के उपलक्ष में दागी गई। उसी दिन टाडीखेल में आठ हज़ार सेना ने अपना जायजा और क़वायद जंगबहादुर को दिखाई। इसके बाद जंगबहादुर ने मि० आलिफैंट को जिन्हें वे लंका से अपने साथ हाथियों का खेदा दिखाने के लिये लाए थे तथा कप्तान कवैना को जिन्हें वे अपने साथ युरोप ले गए थे बिदा किया और वे हिंदुस्तान को पलटे। अब जंगबहादुर मंत्री पद का भार लेकर अपने कर्त्तव्य के पालन में प्रवृत्त हुए।

२३—भयानक षड्चक्र।

जंगबहादुर के विलायत से वापस आने पर उस समय किसी प्रकार का विवाद नहीं मचा, क्योंकि सब लोगों का उन पर पूरा विश्वास था और सभी उन्हें एक सच्चा और धर्मभीरु आस्तिक हिंदू समझते थे। क़ाजी कड़वड़ खत्री से जो जंगबहादुर के साथ विलायत गया था, इनके साथ पुराना बैर था और उसने उस बैर का बदला जंगबहादुर पर झूठा आरोप लगा कर लेना चाहा। अतः उसने चुपके चुपके लोगों से यह कहना प्रारंभ किया कि जंगबहादुर ने विलायत में अंग्रेज़ों के साथ भोजन किया है और वे बेधर्म हो गए हैं। हिंदू जाति को अपने प्राचीन धर्म रीति नीति के साथ कैसा प्रेम है, यह सब लोगों पर प्रगट है। धर्मभ्रष्ट होने पर बेटा बाप को, बाप बेटे को, भाई भाई को, स्त्री पति और पति स्त्री तक को सदा के लिये पृथक् कर देते हैं। जरा सी आशंका की संभावना होने पर लोग हुक्का पानी खाना पीना छोड़ बैठते हैं।

आज पांच छ दिन से यह बात उनके जातिवालों में घर घर फैलने लगी और कड़बड़ खत्री यह कह कर लोगों को उत्तेजना देता रहा कि "भाई जंगबहादुर अख्तियारवाला है। उसे जाति से निकालने का किसे साहस पड़ सकता है। जब तक वह जीता है कोई उसके सामने यह पूछने का साहस तो कर

ही नहीं सकता कि तुमने विलायत में जाकर क्या किया। अब तो किसी का धर्म बचता नहीं देख पड़ता। भला किसके मुँह में बत्तीस दाँत हैं जो उनके साथ खाने पीने से इनकार कर सकता है। वह जीता रहेगा तो एक न एक दिन सबको वेधर्म होना पड़ेगा।" जंगबहादुर का चचेरा भाई जयबहादुर इन से दो वर्ष से भीतर ही भीतर बैरभाव रखता था और वह ऐसे ही मौके की ताक में बैठा था। अब उसने जंगबहादुर के भाई बद्रीनरसिंह को उनके विरुद्ध उकसाया। बद्रीनरसिंह एक सीधा सादा आदमी था। वह कड़बड़ खत्री की इस उत्तेजना पूर्ण बात को सुनकर जंगबहादुर के प्राण लेने पर उद्यत हो गया और जयबहादुर भी उसका साथ देने पर तैयार हुआ। एक तो ज़ंगबहादुर का मारना ऐसे ही सरल काम नहीं था, दूसरे उन सब को यह भी मालूम था कि महाराज सुरेंद्रविक्रम उन्हें कैसा मानते थे, वे तो प्रायः उसके हाथ की कठपुतली ही थे। उनके जीते जी जंगबहादुर पर कोई उँगली नहीं उठा सकता था। यह सब सोचकर उन लोगों ने महाराज सुरेंद्रविक्रम के भी प्राण लेने का विचार किया। अतः उनके छोटे भाई राजकुमार उपेंद्रविक्रम को भी उन्हें अपनी अभिसंधि में मिलाना पड़ा। बद्रीनरसिंह, कड़बड़ खत्री, जयबहादुर और राजकुमार उपेंद्रविक्रम चारों ने मिलकर षड्यंत्र रचा और सब लोगों ने यह निर्धारित किया कि १७ फर्वरी को जब जंगबहादुर बसंतपुर जावें तो राह ही में उनका काम तमाम किया जाय

और इस काम के लिये एक बदमाश को कुछ रुपया देकर ठीक किया। इधर तो जंगबहादुर के मारने के लिये यह प्रबंध किया गया उधर महाराज के प्राण लेने का भार उनके भाई उपेंद्रविक्रम के सिर मढ़ा गया और उनसे यह कहा गया कि वे भी उसी दिन उसी समय महाराज को मार डालें। इस विषय में उन लोगों में अनेक पत्र व्यवहार भी हुए। उन लोगों को बंबहादुर की ओर से भी भय था और इसी लिये उन लोगों ने बंबहादुर को अपनी इस गुप्त अभिसंधि में मिलाना चाहा। चारों ने मिलकर यह तै किया कि बंबहादुर को जंगबहादुर और महाराज के मारे जाने और राजकुमार उपेंद्रविक्रम के राजगद्दी पर बैठने पर जंगबहादुर की जगह पर अमात्य बनाए जाने का लोभ देकर अपने में मिलाने का उद्योग किया जाय। बद्रीनरसिंह के लिये प्रधान सेनापति का पद प्रदान करना निश्चय हुआ और काजी कड़बड़ खत्री और जयबहादुर को बद्रीनरसिंह के नीचे पद प्रदान करने का निश्चय हुआ। सारा प्रबंध ठीक और षड्यंत्र का चिट्ठा तैयार हो गया और बंबहादुर के मिलाने का भार बद्रीनरसिंह के ऊपर छोड़ा गया।

१४ फर्वरी को रात के समय जब सब ठीक ठाक हो गया तो बद्रीनरसिंह ने बंबहादुर को अपने घर पर बुलाया। बंबहादुर बद्रीनरसिंह के घर पर गया तो वहाँ उसे बद्रीनरसिंह के साथ कड़बड़ खत्री और जयबहादुर भी मिले। सबों ने बंबहादुर से पहले तो इस बात के लिये शपथ ली कि वे इस भेद को

किसी से नहीं कहेंगे, फिर उनसे अपनी अभिसंधि में सँमिलित होने के लिये शपथ ली। तत्पश्चात उन लोगों ने अपना सारा प्रबंध जो षड्चक्र चलाने के लिये था, उनसे कहा और प्रतिज्ञा की कि काम हो जाने पर उनको महामात्य पद मिलेगा। बंबहादुर ने उस समय तो उनसे मिल कर सारा भेद ले लिया और इस विषय के सारे कागद पत्र देख लिए और उन लोगों को ऐसा विश्वास दिलाया कि वे उसे अपना शरीक समझ गए, पर जब वे बद्रीनरसिंह के यहाँ से अपने घर आकर लेटे तो उन्हें रातभर नींद न आई। वे जंगबहादुर को बहुत प्यार करते थे। जब वे उस षड्यंत्र को सोचते थे तो उनका अंतष्करण काँप उठता था और उनके हृदय में भ्रातृ-स्नेह उमड़ आता था। उन्होंने सब बातों को भुला कर सोना चाहा पर उन्हें नींद न आई। रात बीती, सबेरा हुआ। दिन आया और गया, पर उनके मन में शांति नहीं आई। वे बड़ी उलझन में थे। यदि वे इस षड्चक्र का समाचार जंगबहादुर से कहते थे तो उनके छोटे भाई बद्रीनरसिंह के प्राण जाते थे और यदि नहीं कहते थे तो उनके पिता के तुल्य पूज्य बड़े भाई के प्राण जाते थे। बड़ी कठिन समस्या थी। वे किसे मरने दे और किसे बचाएँ, दोनों उनके भाई थे। उस समय उनकी दशा बिलकुल सांप छछूंदर की सी थी। उस दिन भी रात को वे इसी उलट फेर में पड़े रहे और उन्हें नींद नहीं आई। सबेरा हुआ। वे दिन भर एकांत में बैठे यही सोचते रहे कि

क्या किया जाय कि उनके दोनों भाइयों के प्राण बचें। सच है, सगे भाई का बड़ा स्नेह होता है।

१६ फर्वरी को बंबहादुर से नहीं रहा गया। वे आधी रात के समय थापाथाली में अकेले जंगबहादुर के घर पर गए। जंगबहादुर अपने घर पर आग ताप रहे थे कि बंबहादुर भी जाकर वहीं आग के सामने बैठ गए। थोड़ी देर तक वे मौन साधे बैठे रहे और जब सब लोग चले गए और जंगबहादुर अकेले रह गए तो फूट फूट कर रोने लगे। जंगबहादुर ने उन्हें रोते देख कारण पूछा, तो उन्होंने कहा कि आज मुझे दो दिन से नींद नहीं आती है। आप से कहते हुए भी डरता हूँ कि आप मुझे भी अपराधी समझेंगे। अब आप के लिये बहुत कम समय है, कल जब आप वसंतपुर जाँयगे तो आप को राह में गोली मारी जायगी। भाई बद्रीनरसिंह, कड़बड़ खत्री, जयबहादुर और महाराजकुमार उपेंद्रविक्रम ने मिल कर यह षड्यंत्र रचा है। मुझे भी उन लोगों ने परसों बुलाया था और बड़ी कड़ी शपथ लेकर इस षड्चक्र में शरीक किया है। मैं दो दिन से इसी उलझन में पड़ा हूँ कि क्या करूँ, आप से कहूँ, या न कहूँ। यदि कहता हूँ तो भाई बद्रीनरसिंह के प्राण जाते हैं और नहीं कहता तो आप मारे जाते हैं। मेरा क्या मैं तो दोनों ओर से गया और दोषी हूँ। इतना कह कर उन्होंने षड्चक्र की सारी कथा जंगबहादुर से कह सुनाई और फिर वे फूट फूट कर रोने लगे।

जंगबहादुर यह समाचार सुन कर ठकमारे से हो गये। वे यह सुन कर भवचक्कर में पड़े कि उनका सगा भाई उसके खून का प्यासा हो रहा है। जंगबहादुर ने बंबहादुर को तो क्षमा कर दिया, पर उनसे कहा कि स्मरण रक्खो यदि खबर झूठी निकली तो परिणाम अच्छा न होगा और सच ठहरने पर मैं तुम्हें उसके उचित पुरस्कार भी दूँगा। जंगबहादुर ने बंबहादुर को यह कह कर अपने पास बैठाल लिया और थापाथाली की शरीर रक्षक सेना को तैयार होने की आज्ञा दी और उसी दम वे स्वयं कोट में पहुँचे।

कोट में पहुँच कर जंगबहादुर ने उसी दम सेना को हथियार बंद होने की आज्ञा दी और तैयार हो जाने पर फौरन विना किसी को कानो कान खबर हुए सौ सौ जवान को एक एक विश्वासपात्र अधिकारी की अध्यक्षता में प्रत्येक षड्यंत्र रचनेवाले के घर पर भेजा। कर्नल जगत्शमशेर को जयबहादुर को पकड़ने के लिये, कप्तान रणमेहर को बद्रीनरसिंह के पकड़ने के लिये और रणोद्धीपसिंह को राजकुमार उपेंद्रविक्रम को पकड़ने के लिये भेजा। कर्नल धीरशमशेर को उन्होंने आज्ञा दी कि आप हमारी रक्षक सेना लेकर नगर के चारों ओर दृष्टि रखिए और उन लोगों का सामना कीजिए जो हथियारबंद हो आज्ञा में भंग डालने की चेष्टा करें।

यह सब प्रबंध बात की बात में हो गया। उधर वे लोग अपराधियों को पकड़ने गए इधर जंगबहादुर ने रात ही को

राज्य के प्रधान प्रधान सर्दारों और महाराजाधिराज सुरेंद्र-विक्रम और भूतपूर्व च्युत महाराज राजेंद्रविक्रम को बुला कर अपराधियों का मुकद्दमा करने के लिये न्यायालय का प्रबंध किया। थोड़ी देर में चारों अपराधी हथकड़ी डालकर कचहरी में उपस्थित किए गए और उनकी परीक्षा होने लगी। अपराधियों ने अभियोग से इनकार किया और कहा हमें षड्चक्र का कुछ भी हाल मालूम नहीं है। मुकद्दमा दूसरे दिन पर मुलतवी किया गया और उनके घरों की तलाशी ली गई, जिस में बहुत से ऐसे पत्र मिले जिनसे उनका अपराधी होना प्रमाणित होता था। जंगबहादुर ने उन सब कागदों को हथिया लिया और छिपा रक्खा और फिर अभियोग की कार्रवाई प्रारंभ हुई। बद्रीनरसिंह ने सब से अधिक वलपूर्वक अपने को निर्दोष कहा और वह न्याय और ईश्वर की दुहाई देने लगा। उसने कहा "यह ईश्वर का कोप है कि मुझ पर भाई के मारने का झूठमूठ दोषारोपण किया जाता है, मैं नितांत निरपराध हूँ, इसका न्याय होना चाहिए।" जंगबहादुर से उसकी यह ढिठाई न देखी गई। उन्होंने अपनी जेब से उन कागदों को जो तलाशी के समय मिले थे बद्रीनरसिंह के सिर पर पटक कर कहा "कप्तान सत्तराम, लो इस झूठे के मुँह पर जूता मारो।" अब तो बद्रीनरसिंह चुप हुआ और क्षमा-प्रार्थना करने लगा। अपराध प्रमाणित हो चुकने पर उस दिन की कार्रवाई

बंद का गई और दंड का विचार दूसरे दिन पर छोड़ा गया तथा अपराधी बंदीगृह में भेज दिए गए।

दूसरे दिन उनके दंड के लिये विचार प्रारंभ हुआ। महाराजाधिराज और उनके पिता ने स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि जो दंड अन्य अपराधियों को दिया जाय वही राजकुमार को भी दिया जाय, इसमें हमारी सम्मति है और हमें कोई आपत्ति नहीं है। न्यायकारियों में किसी ने तो उनके मारने की और किसी ने उनकी आँख निकालने की और किसी ने उन्हें लोहे के पिंजड़े में बंद करके चीतान में भेजने की सम्मति दी। पर जंगबहादुर ने किसी की सम्मति न मानी। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि मैं ऐसे क्रूर दंड का प्रवल विरोधी हूँ और जब मैंने पैशाचिक दंड को एक बार बंद कर दिया है तो चाहे जो हो मैं अपने समय में ऐसे दंडों को कदापि न देने दूँगा। उन्होंने उन्हें जनम-कैद का दंड देने की सम्मति दी और कहा कि अंग्रेज़ी सर्कार को अभी पत्र लिखा जाय कि वह इन चारों अपराधियों को चुनार के दुर्ग में नजरबंद रक्खें और जब तक उत्तर न आवे ये लोग कोट में कैद किए जावें और इन की रक्षा के लिये एक कर्नैल, दो कप्तान और सेना नियुक्त की जाय। सर्कार अंग्रेज़ी ने उन्हें जंगबहादुर के लिखने पर इलाहाबाद के क़िले में नजरबंद रखना स्वीकार किया। जंगबहादुर ने चारों अपराधियों को इलाहाबाद भेज दिया और उन के खर्चे के लिये दस दस रुपया रोजाने की स्वीकृति दी और

उनकी सेवा के लिये पाँच नौकर तीस तीस रुपए महीने के तैनात किए। जयबहादुर तो सन् १८५३ में मर गया पर शेष तीनों को जंगबहादुर ने अपनी माता के आग्रह से फिर नैपाल में बुला लिया। राजकुमार उपेंद्रविक्रम को उन्हेंने पहले तो भाटगाँव में रहने की आज्ञा दी पर थोड़े दिनों बाद उनको फिर काठमांडव में अपने महल में आकर रहने की आज्ञा दे दी और बद्रीनरसिंह को पहले उनके बेटे केदारनरसिंह के साथ जिसे उन्हेंने पालपा का हाकिम नियत किया था, पालपा में रक्खा और वे उनकी गति विगति का निरीक्षण करते रहे, पर थोड़ेही दिनों के बाद उन्होंने उसके अपराध को क्षमा कर और उसे बुला कर पच्छिम की सेना का प्रधान सेनापति बना दिया।

२४—शांतिस्थापन।

जुलाई सन १८५१ में महाराजाधिराज ने गद्दी परित्याग करने का विचार प्रगट किया, पर जंगबहादुर ने उन्हें कुछ तो समझा बुझा कर और कुछ डाँट डपट कर राज-काज छोड़ने से रोका। सन् १८५२ के प्रारंभ में खेदे से पलट कर जंगबहादुर ने फौजदारी के आईन का सुधार और संशोधन किया। २४ मई १८५२ को जंगबहादुर ने पहले पहल नैपाल में महारानी विक्टोरिया के जन्मोत्सव को बड़ी धूमधाम से मनाया और २१ तोपों की सलामी दगाई। तब से जब तक जंगबहादुर शासन करते रहे नैपाल में महारानी का जन्मोत्सव प्रति वर्ष बड़ी धूमधाम से मनाया जाता रहा।

नवंबर सन् १८५२ में फिर जंगबहादुर पर षड्चक्र चलाया गया। अब की बार कप्तान भीटसिंह ने अपने भाइयों समेत उनके प्राण लेने के लिये अभिसंधि की। इस षड्चक्र का भी सारा भेद जंगबहादुर को उस दल के एक पुरुष द्वारा मिल गया, अतः उस दल के अनेक पुरुष पकड़े गए और सबों ने अपराध को स्वीकार किया। न्यायालय ने अपराधियों को प्राणदंड देने की आज्ञा दी पर जंगबहादुर ने उन्हें जन्मभर के लिये चीतान में भेज दिया।

दिसंबर सन् १८५२ में जंगबहादुर खेदे को गए और खेदे

की समाप्ति पर वे अपने साथियों समेत वहाँ ही से बाहर ही बाहर अलमोड़ा होते हुए बद्री और केदारनाथ की यात्रा को चले गए। इन दोनों स्थानों में दर्शन कर वे २६ मई सन् १८५३ को अलीगंज गए और वहाँ से २७ मई को काठमांडव लौट आए।

दूसरे साल १५ मार्च को प्रजा ने जंगबहादुर के शासन से संतुष्ट हो परेड पर उनकी एक पत्थर की मूर्ति उनके स्मारक रूप में स्थापित की। इस मूर्ति का उद्घाटन जरनल बंबहादुर ने किया। उसी दिन सेना की क़वायद भी कराई गई और तोपों की सलामी दी गई। रात को आतशबाजी छूटी और राज्य की ओर से भोज दिया गया।

दो महीने बाद ८ मई को जंगबहादुर के ज्येष्ठपुत्र जगत्जंग का विवाह महाराजाधिराज की पहली महारानी की ज्येष्ठा कन्या के साथ बड़ी धूम धाम से हुआ। इस विवाह से जंगबहादुर की मान मर्य्यादा और अधिक बढ़ गई।

इसी साल जंगबहादुर के घोर शत्रु गुरुप्रसादशाह चौतुरिया ने जो अपने भाई फतेहजंग के मारे जाने पर नैपाल से भागकर हिंदुस्तान गया था और वहीं से जंगबहादुर के प्राण लेने के लिये षड्चक्र चलाता रहा था, जंगबहादुर से क्षमा प्रार्थना की और उनसे अपनी बहन के विवाह की बात चलाई। जंगबहादुर ने क्षमा प्रार्थना करने पर उसे नैपाल में आने की आज्ञा देदी और उसी साल वैशाख के महीने में

उसकी बहिन से व्याह कर सदा के लिये अपने परम शत्रु चैातुरिया को अपना संबंधी और शुभचिंतक बना लिया और गुरुप्रसाद और उसके भाई रामेश्वरशाह को सेना का कर्नैल कर दिया। गुरुप्रसादशाह ने थोड़े ही दिनों बाद अपने पद को परित्याग कर दिया और वह शांतिपूर्वक तराई में बरेवा के इलाके को खरीद वहाँ रहने लगा।

इन दोनों विवाहों से न केवल जंगबहादुर की मान और मर्य्यादा ही बढ़ी अपितु उनका शासन सदा के लिये अकंटक हो गया और उस देश में अब उनका कोई विरोधी न रह गया।

२५—तिब्बत की चढ़ाई ।

सन् १७६१ में तिब्बत की राजधानी लासा में नैपाली और तिब्बती व्यापारियों में सिक्के के व्यवहार के विषय पर परस्पर विवाद मचा था और इन दोनों राज्यों के बीच युद्ध छिड़ा था। तव चीन के सम्राट ने तिब्बतियों की सहायता की। साल भर तक परस्पर घोर संग्राम के बाद सितंबर सन् १७६२ में चीन और नैपाल के बीच संधि हुई जिस में नैपाल ने चीन सम्राट की अधीनता स्वीकार की और प्रति पाँच वर्ष उपहार देने की प्रतिज्ञा की थी। चीन ने नैपाल को विदेशी शक्तियों के आक्रमण के समय सहायता देना स्वीकार किया था। नैपालियों को तिब्बत में कोठियाँ बनाने और चीन और तिब्बत में व्यापार करने की आज्ञा मिली थी, और यह निश्चय हुआ था कि तिब्बत और नैपाल में परस्पर विवाद मचने पर दोनों राज्यों के प्रतिनिधि पेकिन में अपना अपना आवेदन प्रगट करेंगे और चीन उस का उचित निपटेरा कर देगा। उस समय से बराबर नैपाल चीन-सम्राट के लिये प्रति पाँचवें वर्ष उपहार भेजता आया।

सन् १८५२ में जब नैपाल से सर्दार लोग चीन को पंचसाला उपहार लेकर गए तो चीनियों ने उनसे उचित बर्ताव नहीं किया। उन लोगों ने पलटते समय नैपालियों की रसद

बंद कर दी और माँगने पर उनके साथ मार पीट भी की। नैपालियों के आवेदन पर चीन दर्बार ने कुछ सुनाई नहीं की और सब लोग राह में भूख के मारे मर खपे। नैपाल से जो लोग पेकिन उपहार लेकर जाते थे वे प्रायः डेढ़ वर्ष में वहाँ से पलट कर आ जाते थे। इस दफा अवधि बीत जाने पर भी जब चीन से कोई नहीं पलटा तो नैपाल दर्बार बड़ी चिंता में पड़ा। कई महीने राह देखने पर लफ्टेंट भीमसेन राना चीन की राह की कठिनाइयाँ झेल अकेले अपने प्राण लेकर २२ मई सन् १८५४ को बाला जी में पहुँचे। उस समय जंगबहादुर दैव योग से बाला जी में थे। भीमसेन राना ने जंगबहादुर के पास जाकर सम्राट का पत्र दिया और चीनियों के सारे अत्याचार का वर्णन उनसे किया।

थोड़े ही दिनों बाद लासा से तिब्बतियों के अत्याचार का भी समाचार आया। कई साल से तिब्बती अधिकारी वर्ग नैपाल के व्यापारियों पर जो तिब्बत में रहते थे अत्याचार कर रहे थे। इस अत्याचार का परिणाम यह हुआ कि नैपाली और तिब्बतियों में झगड़ा बढ़ गया और मार पीट की नौबत पहुँची, जिसमें अनेक निरपराधी नैपालियों के प्राण गए। जब इस अत्याचार की आवेदना तिब्बती और चीनी प्रतिनिधियों से की गई तो उन लोगों ने उस आवेदना पर कुछ ध्यान नहीं दिया। तब तिब्बत के नैपाली व्यापारियों ने लासा के चीनी आँबा (प्रतिनिधि) को आवेदनपत्र देकर प्रार्थना की कि आप इसे

चीन सम्राट की सेवा में भेज दीजिए। चीनी आँबा ने आवेदन पत्र ले लिया, पर उसने उसे पेकिन भेजवाया या नहीं इसका कुछ पता नहीं चला, क्योंकि इस विषय में कोई उत्तर न तो चीनी आँबा ही ने दिया और न चीन सम्राट ही ने।

चीन की अवस्था उस समय अच्छी नहीं थी। वहाँ गृह युद्ध मच रहा था। तियन नामक एक सैनिक चीन के बदमाशों की एक बड़ी सेना एकत्र कर चीन सम्राट के विरुद्ध खड़ा हुआ था और चीन राज्य को उलट पलट करने की धमकी दे रहा था, जिसके कारण चीन की सारी सेना पेकिन में रक्षार्थ एकत्रित की गई थी। ऐसी अवस्था में चीन अपनी ही रक्षा में ओतप्रोत था और आवश्यकता पड़ने पर वह एक भी जवान सीमा पर नहीं भेज सकता था।

नैपाली ऐसा ही मौका देख रहे थे। उन्हें अपने केरंग और कूटी दर्रों के दक्षिण का प्रदेश छूटने का, जिसे चीनियों ने बलात् सन् १७९२ में तिब्बत को दे दिया था, बड़ा दुःख था और वे इस ताक में थे कि मौका मिले तो उसे फिर अपने अधिकार में लावें। अब तिब्बत की ओर से छेड़ छाड़ शुरू होने से उन्हें बहाना मिल गया और वे लड़ाई के लिये तैयारी करने लगे।

जंगबहादुर ने पुरानी सेना के अतिरिक्त १४००० पैदल और १२००० घोड़सवारों की एक नई सेना खड़ी की। उन्होंने पूर्व और पश्चिम के सैनिक जरनलों को आज्ञा दी कि वे पाँच पाँच हजार नए जवानों को सेना में भरती करें। कारखाने में अनेक

नई नई तोपें ढाली गईं और चरख बनवाए गए। गोली बारूद का ऐसा प्रबंध किया गया कि मेगजीन लड़ाई के सामान से भर गया। सेना के लिये डेरे आदि का प्रबंध किया गया। इस प्रकार सारी तैयारी चढ़ाई की हो गई। प्रत्येक सैनिक को जाड़े के लिये एक एक बक्कस (ऊनी लबादा) और एक एक जोड़ा दोचा (ऊनी जूता) दिया गया। रसद का उचित प्रबंध किया गया और अन्न मोल ले लेकर संग्रह होने लगा। तिब्बत के प्रधान प्रधान पहाड़ी मार्गों की रक्षा के लिये सेना भेजी गई और इसका प्रबंध हुआ कि वहाँ पर तिब्बतियों और चीनियों के आक्रमण करने पर उनका उचित मुकाबिला किया जाय और शत्रु देश में न घुसने पावे। दो बड़ी बड़ी सेनाएँ धनकुटा और जुमिला में भेजी गईं और उन्हें आज्ञा दी गई कि धनकुटा की सेना लनचुना और हथिया के दर्रों पर और जुमिला की सेना पाटी और मुक्तिनाथ के दर्रों पर अधिकार जमा कर उनकी रक्षा का प्रबंध रक्खे। सब प्रबंध ठीक हो गया और सब लोग चढ़ाई के लिये वसंत ऋतु के आगमन की प्रतीक्षा करने लगे।

तिब्बतियों ने नैपालियों को चढ़ाई की तैयारी करते देख एक तिब्बती लामा को काठमांडव में चालाकी से मामला करने के लिये भेजा। उनका इस दौत्य से यह अभिप्राय था कि यदि हो सके तो मामला ऐसे तै किया जाय कि तिब्बत का लाभ हो और यदि न तै हो तो विचार करने के लिये समय लिया जाय

और तिब्बत को इसी बहाने से लड़ाई के लिये तैयारी करने का मौका मिल जाय।

इसी बीच में जंगबदादुर के दूसरे लड़के राना जातजंग-बहादुर का विवाह महाराजाधिराज की दूसरी कन्या से २४ फर्वरी सन् १८५५ को हुआ! विवाह के समय तिब्बती लामा भी जो मामला करने आया था काठमांडव में टिका था। विवाह हो जाने पर तिब्बती लामा काउँसल में बुलाए गए। काउँसिल में जंगबहादुर उनके भाई और दस पाँच प्रधान प्रधान सर्दार अभिमंत्रित किए गए थे। तीन चार दिन बराबर बात चीत होती रही। नैपालियों ने तिब्बत से एक करोड़ रुपया सेना के खर्च और हरजे के लिये माँगा और जंगबहादुर ने कहा कि इसी के साथ व्यापार के लिये भी संधिपत्र हो जाना चाहिए जिसमें फिर दोनों राज्यों में आगे संधि के लिये विच्छेद का भय जाता रहे। सब लोगों ने इसका समर्थन किया और कहा कि जब तक तिब्बती हमारी शर्तों को स्वीकार न करेंगे हम शांति धारण नहीं कर सकते। तिब्बती दूत ने उत्तर दिया कि नैपालियों को उठाईगीरे लुटेरों ने लूटा है जिन के ठौर ठिकाने का तिब्बत की सर्कार को अब तक पता नहीं लगा है। उसने यह भी कहा कि तिब्बत सर्कार का अनुमान है कि नैपालियों को पाँच लाख से अधिक की हानि नहीं पहुँची है और तिब्बत उस हानि को पूरा करने के लिये

तैय्यार है। नैपालियों ने इस बात को न माना। अंत में कुछ निश्चय न हुआ और युद्ध के लिये घोषणा हो गई।

मार्च के महीने में जरनल बंबहादुर तीन रेजिमेंट सेना लेकर केरंग को रवाना हुए। जरनल धीरशमशेर दो रजिमेंट सेना लेकर कूटी के दर्रे पर अधिकार करने के लिये भेजे गए और एक नई रेजिमेंट बालनचन के दर्रों की ओर भेजी गई।

३ अप्रैल को तिब्बतियों ने जरनल धीरशमशेर का मुकाबिला चूसन में ४००० सेना लेकर किया। थोड़ी ही देर की लड़ाई के अनंतर तिब्बती भाग निकले। धीरशमशेर ने जाकर कूटी के दर्रे पर अधिकार कर लिया और वहाँ से तिब्बत की ओर बढ़ कर पाँच मील पर चौकी बैठा दी। जरनल बंबहादुर का किसी ने मुक़ाबिला नहीं किया और वे केरंग में पहुँच गए तथा उन्होंने दर्रे पर अधिकार कर लिया।

इसी बीच में जंगबहादुर को खबर मिली कि तिब्बतियों की एक बड़ी सेना केरंग से दो मंजिल पर पड़ाव डाले है। उन्होंने उसी दम जरनल बखजंग को एक रेजिमेंट तोपखाना और दो रेजिमेंट पदाति तथा जरनल जगतशमशेर को छ रेजिमेंट पदाति सेना लेकर तिब्बत की ओर भेजा।

जगतशमशेर अपनी सेना लिए पौ फटने के पहले घंटगढ़ी में पहुँचे। उस समय दुर्ग में साढ़े छ हजार तिब्बती मौजूद थे और वे दुर्ग के बाईं ओर से उतर कर नैपाली सेना के घेरने का प्रयत्न कर रहे थे। जगत्जंग ने उसी समय लड़ाई प्रारंभ

कर दी। हवा चली, बर्फ़ पड़ी, पर जगतशमशेर सेना लिए लड़ते ही रहे। उस दिन नैपालियों की बड़ी क्षति हुई। २३२ योद्धा और ४० अफसर मारे गए। दूसरे दिन तिब्बती फिर दुर्ग से उतर नैपाली सेना के दाहने पक्ष पर आक्रमण करना चाहते थे कि जगतशमशेर ने उन्हें खेदकर किले के किनारे कर दिया और अपनी सेना को दो भागों में विभक्त कर दुर्ग पर दहने और बाएँ दोनों ओर से आक्रमण किया। पहले तो तिब्बती डटे रहे पर जब जगतशमशेर ने दुर्ग पर गोला बरसाना प्रारंभ किया तब तो वे घबड़ा कर दुर्ग छोड़ निकल भागे। नैपालियों ने उनका पीछा किया। छ सौ तिब्बती नैपालियों के हाथ लगे, शेष भाग गए। दुर्ग में नैपालियों का अधिकार हो गया।

घंटगढ़ी के विजय हो जाने पर जगतशमशेर उसमें अपनी कुछ सेना छोड़ कूच करते झुंगा पहुँचे। झुंगा में उस समय छ हजार तिब्बती थे जो सब के सब तोप के गोले के भय से बाहर निकल कर मैदान में लड़ने के लिये पर्रा जमा कर खड़े हो गए। नौ दिन तक घोर घमासान युद्ध होता रहा। दसवें दिन शत्रु भागे, नैपालियों ने पीछा किया और ग्यारह सौ तिब्बतियों को अपना बंदी बनाया। अब यह दुर्ग भी नैपालियों के हाथ आया और इसमें उन्हें तीन लाख का नमक और बहुत सा बकू और दोचा मिला। तीसरे दिन ढूँढ़ते ढूँढ़ते किले के एक कोने में इन्हें मिट्टी के भीतर दबाया हुआ

एक चमड़े का थैला मिला जिसमें १८२ सेर बुक्की सोना था, जो कम से कम तीन लाख का था। नमक और सोना तो काठमांडव भेज दिया गया पर बक्कू और दोचे सिपाहियों को बाँट दिए गए।

झुंग दुर्ग के विजय का समाचार ४ मई सन् १८५५ को काठमांडव पहुँचा। जंगबहादुर ने बद्रीनरसिंह को बीस हजार नई सेना भरती करने की आज्ञा दी तथा काठमांडव में आवश्यकता पड़ने पर एक लाख सेना तैयार रखने का प्रबंध कर उन्होंने ७ मई को अट्ठारह हजार नई सेना लेकर बाला जी होते हुए झुंगा को प्रस्थान किया। झुंगा पहुँचकर उन्हें पता लगा कि वहाँ से दो कोस पर तिब्बतियों की सेना पड़ाव डाले हुए है। उन्होंने आधी रात के समय छ रेजिमेंट सेना और एक रेजिमेंट घोड़-चढ़ी तोप लेकर उन पर धावा कर दिया। तिब्बती भागे और एक नए दुर्ग में घुस गए और वहाँ लड़ाई होने लगी। जंगबहादुर ने दुर्ग पर गोला बरसाना प्रारंभ किया। थोड़ी देर तक तो तिब्बती लड़े पर अंत को दुर्ग छोड़ सब के सब भाग निकले। दुर्ग नैपालियों के हाथ आया और जंगबहादुर वहाँ सैनिकों को छोड़ झुंगा पलट आए।

उधर जरनल धीरशमशेर को कूटी से सोनागुंबा को जो वहाँ से नौ मील पर था, बढ़ने की आज्ञा मिली। जरनल धीरशमशेर अपनी सेना लिए रात के समय कूटी से सोना-गुंबा को रवाना हुए। पानी खूब बरस रहा था और रास्ता

पहाड़ी तथा बीहड़ था पर धीरशमशेर दिन निकलते सोनागुंबा पहुँच ही गए। उस समय सोनागुंबा में आठ हजार तिब्बती सेना थी। धीरशमशेर ने जब दूरबीन लगा कर देखा तो उन्हें मालूम हुआ कि तिब्बती तोपें चर्ख पर नहीं हैं। अतः धीरशमशेर ने उसी दम सोनागुंबा पर चारों ओर से धावा कर दिया। घोर घमासान लड़ाई हुई और शत्रु दुर्ग छोड़ भाग निकले। नैपालियों ने उनका पीछा किया, जिसमें सैकड़ों तिब्बती मारे गए और दुर्ग पर नैपालियों का अधिकार हो गया।

झुंगा और सोनागुंबा के विजय हो जाने पर वर्षा ऋतु प्रारंभ हो गई और विवश हो जंगबहादुर को वसंत ऋतु के आगमन तक आगे बढ़ना रोकना पड़ा। वह विजय किए हुए दुर्गों में सेना छोड़ उन्हें आगामी आक्रमण के लिये रसद और इंधन इकट्ठा करने तथा रास्ते को साफ़ करने की आज्ञा दे जरनल जगतशमशेर और धीरशमशेर को साथ लेकर काठमांडव को लौट आए।

नैपाल से बराबर हार खाने से तिब्बतियों का साहस छूट गया[illegible]। उन लोगों ने जंगबहादुर को लिखा कि आप संधि की [illegible] करने के लिये अपने अधिकारियों को शिखार्जुन [illegible] जंगबहादुर ने उनके लिखने के अनुसार अपनी ओर से [illegible] अधिकारियों को शिखार्जुन भेजा, पर शिखार्जुन में मामला [illegible] पहुँचे [illegible] हुआ और तिब्बतियों ने कहा कि हम लोग काठमांडव तो नहीं [illegible]

चलकर स्वयं जंगबहादुर से बात चीत करेंगे। अतः नैपाल के अधिकारी वर्ग तिब्बत और चीन के दूतों के साथ काठमांडव आए। काठमांडव में जंगबहादुर ने कहा कि तिब्बत नैपाल को वह देश जिसे नैपाल ने विजय किया है दे दे और एक करोड़ रुपए युद्ध के खर्चे और हर्जे के दे। चीनी और तिब्बती दूतों ने जंगबहादुर की यह बात स्वीकार नहीं की और वे काजी त्रिविक्रम थापा को ले शिखार्जुन में इस लिये लौट गए कि यदि हो सके तो चीनी राजप्रतिनिधि आँवा की सम्मति से संधि का मामला तै किया जाय। चीनी आँवा ने त्रिविक्रम थापा से बहुत रूखा बर्ताव किया। उन्होंने कहा कि हम नैपाल को चार लाख युद्ध का खर्चा और पाँच लाख हर्जा से अधिक नहीं दिलाएँगे और उसे विजय किया हुआ प्रदेश तिब्बत को लौटा देना पड़ेगा। तिब्बत की सारी भूमि चीन सम्राट की है जिसे सम्राट ने तिब्बत के लामा को धर्म भाव से दे रक्खा है, तिब्बतवालों को चीनी भूमि दूसरे को देने का अधिकार नहीं है। यदि नैपाल इस बात को मानता है तो माने अन्यथा चीन और नैपाल में युद्ध अमिट है। निदान त्रिविक्रम थापा शिखार्जुन से काठमांडव वापस आए और संधि की बात कोई तै नहीं हुई।

यह बात तो हुई सितंबर की। पहली नवंबर को सम[ाचार] जो मिला कि पंद्रह हजार तिब्बती और तातारियों ने [ज]रनल कूटी में नैपालियों की छावनी पर छापा मारा और आ[ठ] सो[ल]… हियों को सोते हुए मार डाला है तथा सोनागुंबा से भी नैपाली

सेना मार कर भगा दी गई और उनकी तोप और मेगजीन छीन ली गई हैं।

जिस दिन तिब्बतियों ने कूटी पर धावा किया उसी दिन १७००० तिब्बतियों ने झुंगा पर भी धावा किया। यहाँ नैपालियों ने पहर भर घमासान युद्ध कर के तिब्बतियों को मार भगाया। उस दिन तो तिब्बती भाग गए पर उन लोगों ने कई बार झुंगा पर आक्रमण किया पर हर बार नैपालियों ने उन्हें मार भगाया। तिब्बतियों ने जब देखा कि झुंगा में नैपालियों को विजय करना खेल नहीं है तब उन लोगों ने झुंगा और नैपाल के बीच के सब नाके बंद कर दिए, अब तो नैपालियों को बड़ी कठिनाई पड़ी। झुंगा के हाकिम प्रतिमान ने जब देखा कि अब नैपाल से सहायता मिलनी तो दूर रही वहाँ समाचार भी पहुँचना कठिन है तब उसने दो आदमियों को येन केन प्रकारेण भेज कर सारा हाल कहला भेजा। जंगबहादुर ने समाचार पाते ही उसी दम एक सेना जरनल धीरशमशेर के साथ कूटी को और दूसरी सनकसिंह के साथ झुंगा को भेजी। धीरशमशेर अपनी सेना लिए रास्ते में लड़ते भिड़ते कूटी पहुँचे और उन्होंने तिब्बतियों को वहाँ से मार भगाया और अपना अधिकार जमा लिया।

उधर सनकसिंह सेना लिए रास्ते में मारते काटते झुंगा पहुँचे और उन्होंने तिब्बतियों को वहाँ से भगा दिया। तिब्ब-

तियों के पाँव उखड़ गए। और भुंगा और कूटी में फिर नैपाली ध्वजा फहराने लगी।

अब तो तिब्बती लोग संधि करने के लिये वाधित हुए। जनवरी सन् १८५६ में उनका राजदूत संधि के लिये काठमांडव गया। महीनों वाद विवाद होने पर २४ मार्च को थापाथाली में संधिपत्र लिखा गया जिसके अनुसार तिब्बत ने नैपाल को दश हजार सालाना कर देना स्वीकार किया, नैपालियों को तिब्बत में व्यापार करने की आज्ञा दी, और उनके माल पर से महसूल उठा दिया। इसके अनन्तर नैपाल ने तिब्बत से अपनी सेना को लौटा लिया।

२६—महाराज जंगबहादुर।

तिब्बत के साथ संधि हो जाने से नैपाल की राजनैतिक अवस्था सुदृढ़ हो गई और चारों ओर शांति का राज्य हो गया। तीन महीने बाद जंगबहादुर ने अपने पद से इस्तीफा दिया और बंबहादुर उनके स्थान पर महामात्य पद पर नियत हुए। उनके इस अकारण पदत्याग से महाराजाधिराज से लेकर साधारण से साधारण प्रजा तक सब चकित हुए और सब लोग इस इस्तीफे का कारण मनमाना कल्पना करने लगे। उन्होंने क्यों इस्तीफा दिया इसका कारण तो वेही जानें, पर प्रजा को उनके पद त्याग करने से बड़ा कष्ट हुआ। केवल नौ दस वर्ष उनके सुशासन में रह कर प्रजा ने जो आनंद भोग किया था, उतने से ही वह उन्हें अपना सर्वस्व समझने लगी थी। नैपाल में चारों ओर जंगबहादुर ही का नाम सुनाई देता था और महाराजाधिराज के होते हुए भी कोई उन्हें जानता तक नहीं था। सेना उन्हें अपना मित्र, स्वामी तथा सब कुछ समझती थी और उनके नाम की जयघोषणा करती थी। सब लोगों को देश और प्रजा हित के लिये नैपाल साम्राज्य के साथ जंगबहादुर का संबंध होना अत्यंत आवश्यक जान पड़ा और उनके पद त्याग करने से सब लोग अकुला उठे।

पूर्वीय देशों के इतिहास में, जहाँ प्रजा की स्वतंत्रता पैरों के

नीचे कुचली जाती है, जहाँ वह मुँह रखते हुए पशुओं से भी हीन समझी जाती है, उन्नीसवीं शताब्दि में, विशेष कर नैपाल में, यह पहला उदाहरण है जब सब प्रजा को अपने हित की चिंता हुई। नैपाल के बड़े बड़े सर्दार और देशिक तथा सैनिक मुखिया इस युक्ति को सोचने के लिये कि किस प्रकार जंग-बहादुर फिर शासन का भार लेने के लिये उद्यत किए जाँय, एकत्रित हुए। सब लोगों ने मिल कर यह निश्चय किया कि यदि जंगबहादुर अमात्य हो कर प्रजा का शासन नहीं कर सकते तो उन्हें वलात् नैपाल के राजसिंहासन पर बैठा कर शासन की डोर उनके हाथ में अर्पण की जाय। यह विचार कर सब लोग राजगुरु विजयराज को मुखिया बना कर उनसे राजसिंहासन पर बैठना स्वीकार कराने के लिये थापाथाली गए और उन्होंने विनयपूर्वक प्रार्थना की कि—

"हम लोगों की यह प्रवल इच्छा है कि आप को नैपाल के राजसिंहासन पर बैठावें। आपने प्रजा का बड़ा हित और उपकार किया जिससे कि प्रजा उऋण नहीं हो सकती। साधारण से साधारण पियादे को उसके अच्छे काम करने पर तमगा और वजीफा दिया जाता है पर आप को इस महत्वपूर्ण काम के लिये प्रजा के पास इस से अधिक क्या है जो वह आप को पुरस्कार दे।"

जंगबहादुर ने उन सब की बात सुन के उत्तर दिया कि "यह आप लोगों की कृपा है कि आप मुझे नैपाल के सम्राट पद

पर अभिषिक्त किया चाहते हैं, पर मैं ऐसे पुरुष को जिसे मैंने अपने हाथों राजसिंहासन पर बैठाया है उतार कर राजगद्दी पर बैठना उचित नहीं समझता। मेरा स्वास्थ्य अच्छा नहीं है, मैं आप से प्रतिज्ञा करता हूँ कि पुनः स्वास्थ्य लाभ करने पर शासन को अपने हाथ में लेकर मैं आप लोगों का आज्ञापालन करूँगा।"

सब लोग जंगबहादुर के इस उत्तर को सुन निरुत्तर हो गए और थापाथाली से लौट कर महाराजाधिराज सुरेंद्रविक्रम की सेवा में उपस्थित हुए। उन्होंने जंगबहादुर के स्वार्थत्याग का समाचार महाराज से निवेदन कर उनसे कस्की और लामजंग प्रदेशों का आधिपत्य उनको (जंगबहादुर को) प्रदान करने के लिये अनुरोध किया। महाराजाधिराज ने केवल आधिपत्य प्रदान करना ही स्वीकार नहीं किया वरन् जंगबहादुर को महाराज की उपाधि से विभूषित कर अमात्य पद उनके घराने में सदा के लिये स्थायी रूप से अचल कर दिया।

६ अगस्त को जंगबहादुर के नाम कस्की और लामजंग प्रदेशों के आधिपत्य प्रदान की सनद लिखी गई और वे वहाँ के महाराज बनाए गए। उन्हें समस्त राजकर्मचारियों के नियत करने और पृथक् करने का, वाह्यशक्तियों से संधि विग्रह करने का और दीवानी फौजदारी और फौजी आईनों को बदलने रद्द करने तथा नवीन आईन बनाने का अधिकार प्रदान किया गया। उन्हें अपराधियों को सब प्रकार का दंड देने तथा उन्हें

छोड़ देने का अधिकार भी दिया गया और अमात्य पद सदा के लिये उनके घराने में स्थायी कर दिया गया।

२७—बलवे में जंगबहादुर ।

साल भर बाद २५ मई सन् १८५७ को जरनल बंबहादुर का जो जंगबहादुर के पद त्यागने पर नैपाल के महामात्य पद पर नियुक्त हुए थे, देहांत हो गया। उनकी क्रिया कर्म हो जाने पर महाराज जंगबहादुर ने फिर नैपाल के महामात्य पद का भार अपने ऊपर लिया।

इसी साल हिंदुस्तान में बलवा हुआ और बागियों ने चारों ओर ऊधम मचाना प्रारंभ किया। सर्कार अंग्रेज ने बागियों के उपद्रव से भयभीत हो नैपाल सर्कार से सहायता के लिये प्रार्थना की। २६ जून को जरनल रैमजे ने जंगबहादुर को लार्ड कैनिंग का खरीता दिया जिसमें उन्होंने नैपाल से सहायता माँगी थी। महाराज जंगबहादुर ने २ जुलाई को ६ रेजिमेंट सेना अँग्रेजों की सहायता के लिये काठमांडव से रवाना की। यह सेना गोरखपुर के पूर्व से आई और लखनऊ जाना चाहती थी, पर बीच ही में उसे आज़मगढ़ और जौनपुर को जाने की आज्ञा मिली क्योंकि वहाँ बागियों ने अपना अड्डा बना रक्खा था।

सेना दो भागों में विभक्त होकर आज़मगढ़ और जौनपुर की ओर रवाना हुई और १३ अगस्त को आज़मगढ़ में और १५ को जौनपुर में पहुँची। जब सितंबर में बहुत से बागी आज़-

मगढ़ पहुँच गए तो जौनपुर की सेना भी वहीं बुला ली गई और नैपालियों ने बाग़ियों को आज़मगढ़ से मार भगाया।

इसी बीच में बागियों का दल लखनऊ में एकत्रित होने लगा और थोड़े ही दिनों में लखनऊ पर उनका अधिकार हो गया। लार्ड केनिंग ने घबरा कर जंगबहादुर को स्वयं सेना लेकर अँग्रेजी सर्कार की सहायता के लिये हिंदुस्तान में बुलाया। अतः १० दिसंबर को जंगबहादुर एक बड़ी सेना लेकर काठमांडव से रवाना हुए और सुगोली होकर २३ दिसंबर को बेतिया पहुँचे।

इसी बीच में आज़मगढ़ और जौनपुर की सेना ने अतरौलिया से बेनीमाधव को भगा कर तथा मुबारकपुर के राजा इरादतखाँ को पकड़ कर और फाँसी दे और उनके साथियों को भगा दोनों स्थानों में शांतिस्थापन कर दी थी। पर जब अवधके बागी फिर घुस आए और ऊधम मचाने लगे तो उन लोगों ने १९ अक्तूबर को कुहिया में तथा ३० अक्तूबर को चाँदा में उन्हें फिर मुकाबिला कर के मार भगाया। इस के बाद लंगडन साहब दो सौ गोरे लेकर उनमें संमिलित हो गए और दोनों संयुक्त सेनाओं ने ९ नवंबर को अतरौली में पहुँच कर हज़ार बारह सौ बागियों को मार भगाया तथा २६ दिसंबर को वे गंडक के किनारे सोहनपुर में चार हज़ार बागियों के मुकाबिले के लिये रवाना हुए और वहाँ पहुँच कर उन पर आक्रमण करना ही चाहते थे कि इसी बीच में गोरखनाथ

रेजिमेंट उनको सहायता को आ गई और युद्ध प्रारंभ हो गया। तीन घंटा लड़कर बागी मँझौली की ओर भागे। नैपाली सेना दूसरे दिन छोटी गंडक उतर घाघरा के किनारे पर बरहल घाट को चली गई।

जंगबहादुर बेतिया से चलकर और ३० दिसंबर को गंडक पार कर ५ जनवरी १८५८ को गोरखपुर के पास पहुँचे। गोरखपुर उस समय बागियों के अधिकार में था। बागी जंगबहादुर की अवाई सुनते ही रापती उतर कर पश्चिम की ओर भागे। गोरखपुर से जंगबहादुर ने अपनी उस सेना को जो घाघरा के किनारे पड़ी थी बुला भेजा। जंगबहादुर ने गोरखपुर के भिन्न भिन्न स्थानों से बागियों को निकाल कर वहाँ शांति स्थापित की। जनवरी के अंत में चाँदा में नाजिम के उपद्रव का समाचार पा और पहलवानसिंह को सेना के साथ उधर भेजकर वे १४ फर्वरी को गोरखपुर से चल घाघरा के बाएँ किनारे पर बैड़ारी में पहुँचे। यहाँ से उन्होंने दो रेजिमेंट सेना गोरखपुर और चार रेजिमेंट सेना उस स्थान से ४ मील पर बागियों को दलन करने के लिये भेज गंडक पार किया और अंबरपुर की राह ली। मार्ग में उन्हें ख़बर मिली कि विरोजपुर में बागी अपना अड्डा जमाए हुए हैं अतः जंगबहादुर विरोजपुर को पलट पड़े। यहाँ बागियों ने जान तोड़ कर उन का मुकाबिला किया, पर अंत को दुर्ग टूट गया। विरोजपुर का टूटना था कि आस पास से बागी लोग भाग निकले।

२० फर्वरी को नैपालियों की एक सेना ने फैजाबाद के मार्ग में दो कोट जो बागियों के अधिकार में थे आक्रमण करके ले लिए और बागियों को वहाँ से मार भगाया। दो सप्ताह बाद कुआनो नदी के किनारे जंगबहादुर से और सात हजार बागियों से मुठभेड़ हुई और थोड़ी देर तक घमासान युद्ध मचा रहा। बागी मैदान से भाग कर जंगल में छिप गए। जंगल की आड़ पाकर वे मुकाबिले के लिये तैयार हुए पर जरनल खड्ग-बहादुर अपनी सेना लिए उनके बीच में कूद पड़े और बागी अपना पैर न जमते देख वहाँ से भाग निकले। इसी बीच में बागियों ने फिर गोरखपुर की छावनी पर आक्रमण किया पर नैपालियों ने वहाँ से उन्हें मार भगाया। जौनपुर और गोरख-पुर की नैपाली सेना ने फिर तो बागियों की सफाई करनी प्रारंभ की और पिपरा, साहेबगंज, शाहगंज, बलपा और जलालपुर से जहाँ जहाँ बागियों के गढ़ थे उन्हें मार भगाया।

उधर दिसंबर के अंत में चाँदा के नाजिम ने चौदह सौ बागि-यों को चाँद में एकत्रित किया और फ़ज़ल अज़ीम ने आठ हजार बागियों को बदलपुर के पच्छिम में सरावन में इकट्ठा किया। दोनों बागियों के दल सरकारी सेना का मुकाबिला करने लगे और जवार में ऊधम मचाने लगे। इनको दबाने के लिये गोरखपुर से कर्नल पहलवान सिंह सेना लेकर जौनपुर और आज़मगढ़ की ओर रवाना हुए। इसी बीच में रेनी बहादुर सिंह भी अपना बागियों का दल लिए फ़ज़ल अज़ीम से जा मिला। नसरतपुर

के पास बागियों से नैपाली और गोरों की संयुक्त सेना का सामना हुआ। एक घंटे तक लड़ाई हुई और बागी लोग हार खाकर भाग निकले। फ़ज़ल अज़ीम के भाग जाने पर संयुक्त सेना ने चाँदा की राह ली, पर उन्हें राह ही में ख़बर मिली कि बंदा हसन आठ हज़ार बागियों का दल लिए सिंगरामऊ में अड्डा जमाए राह रोकने के लिये खड़ा है और नाज़िम भी अपनी सेना लिए उसको कुमक देने के लिये वहाँ से थोड़ी दूर पर पर्रा जमाए हुए है। सेना सिंगरामऊ की ओर पलटी और उनकी यह दशा देख उसने दोनों पर एक साथ धावा कर दिया। थोड़ी देर तक लड़ाई हुई पर बागी घबरा कर वहाँ से रामपुर की ओर भाग गए। चाँदा से संयुक्त सेना ने हमीरपुर जाकर फ़ज़ल अज़ीम का सामना किया। दो ढाई घंटे लड़ाई रही। आठ नौ सौ बागी मारे गए अंत में उनके वहाँ से पैर उखड़ गए और वे हरी को भागे। इधर नाज़िम चाँदा सुलतांपुर के आस पास में चक्कर लगा बागियों का दल जोड़ बादशाहगंज पहुँचा और गफ़ूर बेग को बागियों की सेना का सेनापति बनाकर उसने वहाँ पड़ाव डाला। नैपाली सेना बादशाहगंज में २३ फर्वरी को पहुँची और बागियों से लड़ाई प्रारंभ हुई। बागियों से खटाखट तलवार और किर्च बजने लगी। कुछ बागी खेत रहे और कुछ अपना सारा सामान छोड़ केवल प्राण लेकर भाग निकले।

इधर से पहलवान सिंह बागियों को मारते भगाते ५ मार्च

को लखनऊ के किनारे पहुँचे और उन्होंने गोमती के किनारे पड़ाव डाला। उधर जंगबहादुर गोरखपुर से बागियों का पीछा करते और उनका सिर कुचलते १० मार्च को लखनऊ पहुँचे। यहाँ पर कमांडर-इन-चीफ़ ने उनके आने की ख़बर सुनकर उनकी अगवानी के लिये मेटकाफ़ साहब को घोड़ सवारों की सेना देकर भेजा। वे महाराज जंगबहादुर को बड़े तपाक से सर्कारी छावनी में ले आए। वहाँ सर कालिन कैंपबेल ने उनकी १९ तोपों से सलामी की और समस्त अँग्रेजी अफ़सरों को साथ लेकर जंगी बाजे बजवाते हुए दर्बार में उनका स्वागत किया और उनके शुभागमन पर बड़ी कृतज्ञता और हर्ष प्रकट किया। उसी दिन अंग्रेजी सेना ने नैपालियों की सहायता से बेगम की कोठी के पास बागियों पर आक्रमण किया और घमासान युद्ध करके उनको पराजित कर लिया और कोठी पर अधिकार जमा लिया। १२ मार्च को जंगबहादुर ने कैंपबेल साहेब के कहने पर आलमबाग के सामने से बागियों के दल को मार भगाया और तीन बड़ी बड़ी मसजिदों को जहाँ बागी लोग अपना अड्डा जमाए थे एक एक करके छीन लिया। उसी दिन कर्नैल इंद्रजीतसिंह ने सर्कारी सेना की सहायता से बागियों को गोमती के पुल से मार भगाया और ४०० बागियों को गिरफ़्तार कर लिया। १३ को नैपालियों की शेर सेना नहर उतर कर लखनऊ पहुँची। १४ को महाराज जंगबहादुर ने

इमामबाड़े पर आक्रमण किया और वे छत्रमंज़िल, मोतीमसजिद और तारा कोठी को बागियों से खाली कराते कैसरबाग़ पर टूट पड़े। यहाँ बागियों ने उन पर कोठों के ऊपर से खूब गोलियाँ बरसाईं, पर महाराज जंगबहादुर घुसकर निकलना जानते ही न थे, अंत को कैसरबाग़ भी सर हो गया। यहाँ दिन भर लूट मची रही और बेगमात के जवाहिरात गहने शाल दुशाले लुटते फुकते रहे। १५ को महाराज कैसरबाग देखने गए। इसी दिन जरनल आउटराम ने गोमती पार कर उसके दूसरे किनारे पर भी अपना अधिकार जमाया और नैपाली, सिक्ख और अंगरेजी सेना ने मच्छीभवन तथा आसफुद्दौला के मकबरे पर अधिकार जमा लिया। १६ को बागियों ने फिर आलमबाग पर आक्रमण किया, पर जंगबहादुर ने उन्हें फिर मार भगाया।

१७ को जरनल आउटराम ने हुसेनी मसजिद पर चढ़ाई की। महाराज जंगबहादुर उनकी कुमक को जा रहे थे कि राह में बागियों ने उन पर आक्रमण किया। फिर क्या था वीर गोरखे हाथ में कुकड़ी लेकर तोप के मुहड़े पर 'जंगबहादुर की जय' बोलते कूद पड़े और उन्होंने बागियों को मार भगाया। १८ मार्च को दिन भर शहर में सड़कों पर सिपाही फिरते रहे और गली कूचों में ढूँढ़ ढूँढ़ कर बागी मारे गए। दूसरे दिन १९ को मूसा बाग पर चढ़ाई हुई। यह बाग लखनऊ से दो कोस पर गोमती के किनारे है। यहाँ बागी लोग भागकर

बिर्जिस क़द्र और उनकी माता हज़रत महल के पास एकत्रित हुए थे और एक बार फिर ऊधम मचाना चाहते थे। जरनल आउटराम और जंगबहादुर ने चारबाग की राह से मूसा बाग पर आक्रमण किया और बात की बात में उसे बागियों से खाली करा लिया। २० को महाराज जंगबहादुर को ख़बर मिली कि नैपाली छावनी से थोड़ी दूर पर बागियों ने दो मेमों को जिनमें एक सर माउंट स्टुअर्ट जैकसन, कमिश्नर अवध की बहिन और दूसरी उनके असिस्टेंट कमिश्नर पौट्रिक ओर की सहधर्मिणी थीं, बादशाह के एक नौकर वाजिदअली के घर में बंद कर रक्खा है। उन्होंने उसी दम अपनी सेना के कुछ सिपाहियों को उनके लाने के लिये भेजा। नैपाली सैनिक आज्ञा पाते ही वाजिदअली के घर पर गए और उन्हें छुड़ाकर पालकी पर चढ़ाकर जंगबहादुर के पास ले आए, जिन्हें जंगबहादुर ने सर्कारी छावनी में भेज दिया। लखनऊ बागियों से साफ़ हो गया था पर उसी दिन एक बागी मौलवी जो लखनऊ से हार खाकर भाग गया था फिर लखनऊ में घुस आया और उसने सआदतगंज में अपना अधिकार कर लिया, पर उसी दम वह वहाँ से मार कर भगा दिया गया और लखनऊ सदा के लिये अंग्रेजों के अधिकार में आ गया।

लखनऊ के विजय हो जाने पर महाराज जंगबहादुर २३ मार्च को लखनऊ से इलाहाबाद को रवाना हुए और पहली

अप्रैल को इलाहाबाद पहुँचे। वहाँ लार्ड कैनिग ने उनका बड़े आदर से स्वागत किया और सर्कार अंग्रेज़ी के गाढ़े समय काम आने के लिये उनको धन्यवाद दिया। चार दिन यहाँ ठहर कर ५ अप्रैल को वे फिर लार्ड कैनिंग से मिले और उन्होंने उनको फिर धन्यवाद दिया और चलते समय कहा कि मुझे होम डिपार्टमेंट की चिट्ठियों से मालूम हुआ है कि सर्कार अंग्रेज़ी आप के इस कृत्य के बदले में नैपाल को उसके वे प्रदेश वापस कर देगी जो सन् १८१५ में सर्कार अग्रेज़ी ने ले लिए थे।

इलाहाबाद से चलकर महाराज जंगबहादुर काशी पहुंचे और वहाँ छः दिन ठहर सेना को पीछे छोड़ सीधे नैपाल को रवाना हुए और ४ मई को थापाथाली पहुँचे। वहाँ पहुँच कर थोड़े ही दिनों बाद उन्हें बिर्जिसक़दर की चिट्ठी मिली जिसमें बिर्जिसक़दर ने महाराज से बड़ी चापलूसी से अंग्रेज़ों के विरुद्ध लड़ने के लिये कुमक माँगी थी और लिखा था कि यदि नैपाल हमारी सहाय करेगा तो हम गंगा नदी तक का प्रदेश नैपाल को दे देंगे। महाराज जंगबहादुर ने इसके उत्तर में बिर्जिसक़दर को स्पष्ट शब्दों में लिख भेजा कि नैपाल सर्कार अंग्रेज़ी के विरुद्ध आपकी कभी सहायता नहीं कर सकता और उन्हें सम्मति दी कि आप शीघ्र मि० मांटगोमरी, अवध के कमिश्नर से मिलिए और सर्कार अंग्रेज़ी से क्षमा

प्रार्थना कीजिए, वह आप को आपके साथियों समेत अवश्य क्षमा कर देगी ।

७ मई को महाराज जंगबहादुर को लार्ड कैनिंग का ख़रीता मिला जिसमें उन्होंने नैपाल सर्कार को उसकी सहायता के लिये धन्यवाद दिया और सूचित किया कि सर्कार अंग्रेज़ी उसे उन प्रदेशों को लौटा देगी जिसके विषय में वह जंगबहादुर से प्रतिज्ञा कर चुके हैं।

जब हिंदुस्तान में शांतिस्थापन हो गई तो बागी लोग अपनी जान लेकर नैपाल की ओर भागे। जंगबहादुर को ख़बर मिली कि बागी झुंड के झुंड भाग भाग कर सुरही के जंगल में एकत्रित हो रहे हैं। उन्होंने मई के अंत में पहलवान सिंह को सेना लेकर उन्हें पहाड़ पर चढ़ने से रोकने के लिये भेजा। पहलवानसिंह दो मास तक उनकी गति का निरीक्षण करते रहे और जब उन्होंने देखा कि बागियों की संख्या दिनों दिन बढ़ रही है तो उन्होंने कुमक के लिये जंगबहादुर से प्रार्थना की। महाराज जंगबहादुर ने कर्नैल रनवजीर को ४ रेजिमेंट सेना लेकर नवाकोट भेजा और कह दिया कि वहाँ मेरे आगमन की प्रतीक्षा करना। १४ नवंबर को वे नवाकोट पहुँचे। यहाँ नवाब बिर्जिसक़दर और उनकी माता बेगम हज़रतमहल जंगबहादुर से मिलीं। उन्होंने उनके गुज़ारे का प्रबंध कर दिया और थापाथाली में उनके रहने के लिये स्थान दिला दिया। वहाँ से ये सुरही के जंगल को गए। वहाँ तेईस हज़ार बागी

जमा थे जिनमें ग्यारह हज़ार हथियारबंद थे। वहाँ उन्हें पता मिला कि नानाराव, बालाराव और अज़ीमुल्लाह मर गए। महाराज जंगबहादुर ने उनके खानदानवालों के लिये गुज़ारा बाँधकर उन्हें भी थापाथाली के पास रहने के लिये स्थान दिला दिया। महाराज को देख बागियों ने हथियार रख दिए। महाराज ने उन बाग़ियों को जिन्होंने अंग्रेज़ों की मेमों और बच्चों को मारा था पकड़ कर हिंदुस्तान में भेज दिया और शेष को नेपाल की तराई में रहने को जगह दे दी। यहाँ ही नसीराबाद के बाग़ियों के साथ अठारह युरोपियन साहब और मेमें मिलीं जिन्हें वे पकड़ ले गए थे। इनको महाराज जंगबहादुर ने छुड़ा दिया।

२८—रामराज्य ।

सन् १८५८ में हिंदुस्तान में बलवे के शांत हो जाने के साथ ही साथ चारों ओर राम का राज्य हो गया । नैपाल में जंगबहादुर पहले ही से अपना पैर दृढ़ कर चुके थे, सारी प्रजा उनके हाथ में थी, सैनिक उन्हें छोड़ दूसरे को अपना अधिनायक ही नहीं मानते थे । प्रजा उनके शासन से कहाँ तक प्रसन्न थी इसका प्रमाण इसीसे मिल सकता है कि जब उन्होंने सन् १८५६ में अपने पद से इस्तीफा दे दिया था तो प्रजा उन्हें नैपाल का सिंहासन अर्पण करने के लिये उद्यत हो गई थी, जिसका उस वीर पुरुष ने श्रीकृष्णचन्द्र की भाँति सबका कर्ता हर्ता होने पर भी तिरस्कार कर दिया था । महाराजाधिराज सुरेंद्रविक्रम यद्यपि पहले ही से उनके हाथ में थे और उन्हीं के बल से वे नैपाल के सिंहासन पर बैठे थे, पर अब वे महाराज जंगबहादुर के पुत्रों के साथ अपनी दो कन्याओं को व्याह कर उनके संबंधी हो गए । जंगबहादुर नैपाल के नाममात्र के महामात्य थे, सच पूछा जाय तो वे अधिराज के सारे अधिकारों को स्वयं बर्तते थे और स्याह सफेद जो चाहते थे करते थे, कोई उनकी बातों में हाथ नहीं डाल सकता था । महाराज सुरेंद्रविक्रम नैपाल के सम्राट तो थे पर वे केवल राजसिंहासन की शोभा के लिये थे, वास्तव में जंगबहादुर ही

नैपाल के सच्चे शासक और सम्राट थे, जो राजा और प्रजा दोनों के विश्वासपात्र और भक्तिभाजन थे।

नैपाल में और उसके सीमागत देशों में शांति स्थापित हो जाने पर महाराज जंगबहादुर ने अपना शेष समय अपने देश की अवस्था सुधारने में और प्रजा के सुख संपादन में लगाया। बीच बीच में जब उनका जी काम करते करते ऊब जाता था तो वे शिकार वा खेदा के लिये थापाथाली छोड़ कर तराई की ओर जाड़े के दिनों में आया करते थे और गर्मी के दिनों में वे गोकरण और नागार्जुन पहाड़ों पर हवा खाने चले जाते थे। वे दिन रात चाहे वे थापाथाली में हों वा काठमांडव में, शिकार में हों वा खेदा में, तराई में हों वा गोकरण वा नागार्जुन पहाड़ों पर, दर्बार में हों वा घर पर, राज्य के कामों को किया करते थे। उनका सदा ध्यान प्रजा की ओर रहता था और उसे सुखी रखने के लिये वे सदा प्रयत्न किया करते थे।

सन् १८६० में देश की शक्ति को दृढ़ करने के लिये उन्होंने नए नए ढंग की अच्छी अच्छी तोपें ढलवाईं जो पुरानी तोपों से अधिक सुडौल और दूर तक शुद्ध मार कर सकती थीं। अब उन्होंने नैपाल में जंगलों का सुधार किया और तराई के जंगलों की रक्षा का उचित प्रबंध किया तथा उनकी आमदनी से देश के कोष को बढ़ाया। राज्य में सड़कों को दुरुस्त कराने की उन्होंने आज्ञा दी और उन पर मील के पत्थर गड़वाए तथा जायदाद के परिवर्त्तन के आईन का संशोधन किया।

दूसरे साल नैपाल में अनावृष्टि हुई। बागमती नदी जो काठमांडव के नीचे बहती है सूख गई। सब से अधिक दुःख हथिसार के हाथियों को हुआ। जंगबहादुर ने उनके लिये बागमती नदी के पेटे को खोद कर गहरा करने की आज्ञा दी, जिससे गरीब प्रजा का पालन हुआ और हाथियों के नहाने और जल पीने के लिये सुविधा हुई। इसी साल उन्होंने देश में जगह जगह सड़कों और पुलों का काम खोला और अनेक जगह सर्कारी मकान बनवाए जिनमें एक हाथीबन का डाँक बँगला था जिसे उन्होंने उन अँग्रेज़ों के ठहरने के लिये बनवाया था जो वहाँ शिकार खेलने जाया करते थे।

इसी साल पाटन में घोर आग लगी। महाराज जंगबहादुर समाचार पाते ही पंद्रह हजार आग बुझानेवालों का दल लिए पाटन पहुँचे और बात की बात में उन्होंने आग बुझवा दी।

नैपाल में तराई का बंदोबस्त भी इसी साल उन्होंने कराया। पहले किसानों से कच्ची तहसील हुआ करती थी और उन्हें खेत सर्कार की ओर से नियमित समय के लिये दिए जाते थे। किसान समय पूजने पर अपने खेत काट कर अंग्रेज़ी राज्य में नैपाल की सीमा के बाहर भाग जाया करते थे। इस प्रकार नैपाल की मालगुज़ारी का बहुत बड़ा भाग प्रति वर्ष डूब जाता था। जंगबहादुर ने आय की रक्षा के लिये चौधरी नियत किए और उन्हीं के साथ भूमि का बंदोबस्त किया और उन्हें मालगुज़ारी का उत्तरदाता ठहराया। प्रति तहसील में कई एक

चौधरी नियत हुए जो प्रत्येक गाँव के ज़मीदारों वा किसानों से मालगुज़ारी वसूल करते थे और खजाने में किस्त पर दाखिल करते थे। चौधरी के कहने पर तहसील से मालगुजारी वसूल करने के लिये उसे सहायता दी जाती था, पर यदि चौधरी अपनी चौधराहट के गाँवों की मालगुजारी न वसूल कर पाता तो उसे वह अपने पास से देनी पड़ती थी।

सन् १८६२ के अप्रैल मास में जंगबहादुर ने चीन से तीन कारीगर बौद्धों के शंभुनाथ नामक स्थान की मरम्मत के लिये बुलाकर उसकी मरम्मत कराई और हिंदुओं और बौद्धों के मंदिर और विहार आदि की रक्षा का प्रबंध किया। गोदावरी के बन में इसी साल जंगबहादुर ने तीन पशुशालाएँ खोलीं। सन् १८६३ में उन्होंने नैपाल की अनेक आईनों का संशोधन किया तथा कई एक नई आईनें जारी कीं। इसी साल उनके चैाथे भाई कृष्णबहादुर का देहांत हुआ जिससे महाराज जंगबहादुर को बड़ा दुःख हुआ।

सन् १८६४ में खेदे से पलट कर उन्हें मालूम हुआ कि नैपाल में सैनिक जागीरदारों और उनके किसानों के बीच अनेक झगड़े लगातार हो रहे हैं। इसके लिये महाराज ने जंगी आईन में अनेक नए नियम बढ़ा कर सदा के लिये उनके परस्पर के झगड़े को शांत कर दिया। बलरामपुर के महाराज दिग्विजयसिंह इसी साल खेदे में जंगबहादुर से मिले थे। इस वर्ष नागार्जुन से पलट कर उन्होंने देश में जन्म और

मरण का लेखा लिखे जाने की आज्ञा दी और आगामी वर्ष में नैपाल की मनुष्यगणना का प्रबंध किया।

जून सन् १८६५ में महाराज को मालूम हुआ कि भोटिया सिपाही जिन्हें सर्कार की ओर से माफी जागीरें मिली थीं अपनी जागीरों से अधिक भूमि को कई वर्षों से धोखा देकर जोत रहे हैं। अतः जंगबहादुर ने उनकी जागीरों की पैमाइश कराई और जो अधिक भूमि वे लोग जोत रहे थे वह उनसे निकाल कर दूसरे किसानों को जोतने के लिये दिला दी। इस साल महाराज ने नैपाल और तिब्बत के बीच के दर्रों की नाप कर के उनके नकशे बनाए जाने का प्रबंध किया। इस वर्ष वर्षा में बागमती की बाढ़ से पथरघट्टा में खेती को बड़ी हानि पहुँची और वहाँ के किसानों ने महाराज के पास निवेदन पत्र दिया, जिस पर महाराज जंगबहादुर ने दस हजार रुपए की मंजूरी वहाँ पर बागमती में बाँध बनाने के लिये दी।

सन् १८६८ में महाराज ने तराई का फिर बंदोबस्त किया और उन किसानों की जिन्हें परती भूमि आबाद करने के लिये तीन वर्ष तक के लिये माफी दी गई थी, जोत की मीयाद को तीन वर्ष से बढ़ा कर सात वर्ष कर दी और कुआँ खोदने के लिये सर्कारी खजाने से अगौड़ी दिलवाई।

सन् १८७० में महाराज के ज्येष्ठ पुत्र जगत्जंग को अतीसार हो गया। अनेक वैद्यों की दवा की गई पर उन्हें कुछ लाभ नहीं हुआ। महाराज जंगबहादुर को उनकी बीमारी से बड़ी चिंता

हुई और जब वे सब दवा कर के हार गए तो अंत को डा० राइट को उनकी चिकित्सा के लिये बुल भेजा। इनकी चिकित्सा से जगत्‌जंग चंगे हो गए। इस उपलक्ष में महाराज ने अनेक दान पुण्य किए और बनारस की बुड्ढी विधवा अनाथ नैपाली स्त्रियों के सहायतार्थ धन दिया। इसी वर्ष महाराज ने अपनी दो कन्याओं का विवाह किया, जिनमें एक तो जरकोट के राज-कुमार से और दूसरी नैपाल के महाराजाधिराज युवराज से व्याही गई जो महाराज पृथिवीवीरविक्रम जंगबहादुरशाह नैपाल के महाराज की राजमाता हुई।

२९—भारी चोट ।

अपनी दोनों कन्याओं का विवाह कर के महाराज जंग-बहादुर तराई में खेदा और शिकार के लिये उतरे। सन् १८७१ के प्रारंभ में एक दिन महाराज अपने साथियों समेत हाथी पर सवार जंगल में बाघ के शिकार को जा रहे थे, चारों ओर से हँकवा हुआ और एक पुराना बाघ अपनी बाघिनी समेत महाराज के सामने दिखाई पड़ा। महाराज ने अपने तुले हुए हाथ से उन पर गोली चलाई जो बाघिनी को लगी। बाघिनी तो वहीं तमाम हो गई पर बाघ क्रोध में आकर महाराज के हाथी पर टूटा। वह हाथी के सिर पर पहुँच और महाराज की बंदूक की नली को अपने कराल दांतों से कड़कड़ा के महावत की टाँग नोचता हुआ नीचे कूद पड़ा और एक पास की झाड़ी में जा छिपा।

महाराज ने बाघ पर फिर दूसरी बार गोली चलाई। संयोग की बात है कि जिस पुरुष का निशाना आज तक खाली नहीं गया था वह आज खाली गया। बाघ बंदूक का शब्द होते ही महाराज के हाथी पर कूदा और उसने उसके हौदे को अपने बल से इतना झकझोरा कि हौदा हाथी की पीठ से खसक कर बग़ल की ओर झुक पड़ा। बाघ तो कूद कर फिर झाड़ी में भाग गया पर महाराज हौदे से पृथिवी पर गिर पड़े। हाथी ने

उनके गिरते ही भ्रमवश उन्हें बाघ समझ अपने पिछले पैर को उन पर रख दिया। दैव योग से हाथी का पैर महाराज की बाईं जाँघ पर पड़ा जिससे महाराज की जान तो बच गई पर उनकी जाँघ में बहुत चोट आई। लोगों ने महाराज को भूमि पर अचेत पड़ा देख कर बाघ की कुछ परवाह न कर दौड़ कर उन्हें उठा लिया और लशकर में ले आए। उसी दम थापाथाली में महाराज के चोट आने का समाचार भेजा गया और वहाँ से जरनल जगत्‌जंग समाचार पाते ही तराई में महाराज के पास आए। बड़े बड़े चिकित्सक महाराज की चिकित्सा के लिये बुलाए गए और चिकित्सा होने लगी। जरनल जगतजंग तराई में महाराज के साथ जब तक वे अच्छे न हो गए बने रहे और अच्छे हो जाने पर इन्हें लेकर थापाथाली गए।

३०—हरिहर क्षेत्र का मेला।

इसी साल के अंत में अंग्रेज़ी सर्कार ने हरिहर क्षेत्र में एक बहुत बड़ा मेला लगवाने का प्रस्ताव किया। इसकी ख़बर चारों ओर फैली। महाराज जंगबहादुर ने भी मेले में पधारने की तैयारी की और अंग्रेज़ी सर्कार को अपने आगमन की सूचना लिख भेजी। सर्कार अंग्रेजी की ओर से मि० जे० डैविड साहब महाराज के साथ रहकर अंग्रेज़ी राज्य में उनके लिये प्रबंध करने के लिये नियत हुए। महाराज जंगबहादुर ७ नवंबर सन् १८७१ को थापाथाली से चल कर सुगोली होते हुए २६ नवंबर को हरिहर क्षेत्र पहुँचे। २७ नवंबर को महाराज जरनल जगतशमशेर, जातजंग और पद्मजंग को साथ लेकर लार्ड मेओ से मिलने गए। वाइसराय ने दर्बार में उनका स्वागत किया और अपराह्न में वे स्वयं महाराज के डेरे पर उनसे मिलने के लिये आए। दूसरे दिन वाइसराय फिर महाराज के पास आए और उन्हें बाल के नाच में जिसे उन्होंने महाराज के वहाँ पधारने के उपलक्ष में रात को कराने का विचार किया था, निमंत्रित किया। महाराज वाइसराय के निमंत्रण के अनुसार अपने कुटुंबियों समेत रात को बाल के नाच में पधारे। २६ को नैपाली और अंग्रेजी अफ़सरों ने मिलकर महाराज और वाइसराय के सामने चाँद-

मारी की और ३० को महाराज और वाइसराय का दलबल सहित एक साथ चित्र उतारा गया। पहली दिसंबर को महाराज देशी राजों महराजों और रईसों से मिले। इसके दो चार ही दिन बाद हरिहर क्षेत्र में हैजे की बीमारी फैली, तब महाराज जंगबहादुर हरिहर क्षेत्र से नैपाल को चल दिए और मोतीहारी होते हुए थापाथाली चले गए।

—

३१—महाराज जंगबहादुर कलकत्ते में ।

सन् १८७४ में सर्कार अंग्रेजी और नैपाल के बीच सीमा के लिये विवाद मचा और अनेक पत्र व्यवहार होने पर भी सीमा का झगड़ा तय नहीं हुआ। उस समय महाराज जंगबहादुर स्वयं वाइसराय से मिलकर इस झगड़े का निपटेरा करने के लिये २० सितंबर को काठमांडव से कलकत्ते को पधारे। उस समय महाराज के साथ जरनल जोतजंग, कर्नैल त्रिविक्रम, रामसिंह, सनकसिंह और सिद्धमन आदि सत्तर नैपाली सर्दार और महाराज की दो शरीररक्षक कंपू साथ गई थीं।

पहली अक्तूबर को महाराज अपने साथियों समेत पटने पहुँचे। वहाँ सर्कारी छावनी की सेना ने उनका स्वागत किया। यहाँ महाराज जंगबहादुर दो चार दिन ठहरे रहे और स्पेशल गाड़ी से ९ अक्तूबर को प्रातःकाल कलकत्ते पहुँचे। वहाँ सर्कार की ओर से एक कंपू सेना लेकर एक कर्नैल घाट पर उनके स्वागत के लिये उपस्थित था। सेना ने उनके उतरते ही अपने हथियार उनके सामने अर्पण किए और फ़ोर्ट विलियम से उनके लिये तोप की सलामी दागी गई तथा वाइसराय के दो सिक्रेटरियों ने उनका स्वागत किया।

दूसरे दिन महाराज वाइसराय से मिलने गए जिन्होंने उन

का बड़े सत्कार से स्वागत किया। दो दिन तक वे लगातार वाइसराय से मिलकर सीमा के सारे झगड़ों को जिन्हें न समझ कर सर्कारी कर्मचारी बड़ी उलझन में थे और कोई निपटेरा नहीं होता था, स्वयं तय कर लिया।

सीमा का झगड़ा निपट जाने के बाद जंगबहादुर २० अक्तूबर तक कलकत्ते में रहे और वहाँ के प्रधान प्रधान स्थानों को देख भाल कर २१ को वहाँ से पटने को रवाना हुए। पटने में पहुँच कर त्रिविक्रम थापा ने कहा, अब मैं बूढ़ा हो गया हूँ और मेरा बल क्षीण हो गया है। मेरी प्रार्थना है कि अब आप मुझे अपना पद त्यागने की आज्ञा दें। मेरा विचार है कि मैं आपकी आज्ञा लेकर अब अपना शेष जीवन प्रयाग-राज में बिताऊँ। महाराज जंगबहादुर ने उन्हें आज्ञा दे दी। त्रिविक्रम थापा तो महाराज की आज्ञा पाकर प्रयाग सिधारे और महाराज नैपाल को चले गए।

३२—युरोप की पुनर्यात्रा की तैयारी ।

कलकत्ते से पलट कर महाराज जंगबहादुर ने दूसरी बार युरोप की यात्रा के लिये तैयारी की। अपनी अनुपस्थिति में काम चलाने का उचित प्रबंध कर और उसके लिये युक्ति-युक्त शिक्षा दे वे १६ दिसंबर सन् १८७४ को प्रधान सेना-धिनायक जरनल जगतजंग, जीतजंग, बबरजंग, रणवीर-जंग, केदारनरसिंह, बंबीरविक्रम, वीरशमशेर, अंबरजंग, ध्वजनरसिंह, कर्नैल नरजंग, महाराजकुमार धीरेंद्रविक्रम-शाह, रणसिंह, लालसिंह, मेजर दलभंजन, संग्रामबहादुर, कप्तान चंद्रसिंह, लफ्टेंट गंभीर, पुरोहित अमरराज आदि तथा शरीर रक्षक सेना और अन्य नौकर चाकरों को साथ लेकर थापाथाली से रवाना हुए।

६ जनवरी सन् १८७५ को वे हाजीपुर पहुँचे और वहाँ से रेल पर सवार हो ११ को काशी पहुँचे। बनारस में उनका उचित स्वागत हुआ और वे भेलूपुर में महाराज विजय-नगर की कोठी में ठहरे। यहाँ वे अनेक अंग्रेजी कर्मचारियों महाराज काशीपुर, राजा साहब खैरागढ़, महारानी नैपाल और उनके राजकुमारों से मिलकर इलाहाबाद रवाना हुए और १३ जनवरी को वहाँ पहुँच गए।

इलाहाबाद में पहुँच कर महाराज जंगबहादुर ने वहाँ लेफ्‌-

टेंट गवर्नर सर जान स्ट्रैची साहब को लिखा कि मैं अपने साथियों समेत त्रिवेणी में स्नान करना चाहता हूँ, पर लेफ्टेंट गवर्नर ने यह उत्तर लिख भेजा कि आपको हथियारबंद हो कर घाट पर जाने की आज्ञा नहीं दी जा सकती। लेफ्टेंट गवर्नर का यह सूखा जवाब उन्हें भला नहीं लगा और उनको बहुत दुःख हुआ। उन्होंने गंगा स्नान करने का संकल्प त्याग दिया और अपने साथियों को आज्ञा दी कि कोई नैपाली घाट पर न जावे। जब लेफ्टेंट गवर्नर के इस कृत्य का समाचार वाइसराय को मिला तो उन्होंने लेफ्टेंट गवर्नर को तार दिया कि महाराज जंगबहादुर को कभी न रोका जाय और उन्हें त्रिवेणी स्नान करने की आज्ञा दी जाय। लेफ्टेंट गवर्नर ने महाराज को फिर लिखा कि आप खुशी से त्रिवेणी नहाने जा सकते हैं, पर महाराज जंगबहादुर ने उन्हें साफ लिख भेजा कि अब हम त्रिवेणी स्नान नहीं करेंगे।

इलाहाबाद से चल कर वे जबलपुर होते हुए नासिक पहुँचे और वहाँ नर्म्मदा और गोदावरी में स्नान कर २१ को बंबई पहुँच गए। यहाँ वे बंबई के गवर्नर, सर दिनकरराव और रूस के ग्रांड ड्यूक से, जो उस समय बंबई में थे मिले। यहाँ उन्हों ने विलायत जाने के लिये जहाज ठीक किया और वे चलने की तैयारी कर रहे थे कि ३ फर्वरी को सायंकाल के समय नगर की ओर घोड़े पर चढ़े जाते हुए महालक्ष्मी पहुँच कर अचानक उनका घोड़ा भड़का और उसने उन्हें जमीन पर

पटक दिया। महाराज पत्थर की गच पर गिरे और उनकी छाती में कठिन चोट आई। लोग उन्हें गाड़ी में डाल कर डेरे पर ले गए। महाराज के चोट लगने की खबर सुनकर गवर्नर ने उसी दम एक अंग्रेज डाक्टर को उनकी चिकित्सा के लिये भेजा। डाक्टर ने चोट देखकर कहा कि घबड़ाने की बात नहीं है, यह चोट एक महीने की चिकित्सा से अच्छी हो जायगी। चिकित्सा होने लगी। समाचार नैपाल भेजा गया जिसे सुनकर उनकी कई महारानियाँ बंबई पहुँची। कुछ अच्छे हो जाने पर महाराज विलायत जाने के लिये तैयार हुए पर नैपाली वैद्यों ने, जो महाराज के साथ थे, कहा कि अभी आप अच्छे नहीं हुए हैं, समुद्र की वायु लग जाने से चोट के फिर उभड़ आने की संभावना है। इसी पर महारानियों ने भी अनुरोध किया। निदान महाराज को उनकी बात माननी पड़ी और विवश हो कर उन्हें अपना संकल्प छोड़ देना पड़ा।

महाराज १ मार्च को बंबई से वापस हुए और जबलपुर होते हुए ७ तारीख को इलाहाबाद पहुँचे। वहाँ त्रिवेणी स्नान कर वे बनारस आए। बनारस में आकर वे विजयनगर के महाराज सर गजपतिराज, इंदौर के महाराज सर तुकाजीराव होलकर तथा बनारस के महाराज ईश्वरीप्रसाद नारायण सिंह से मिले और नैपाल को चले गए।

३३—प्रिंस आफ वेल्स नैपाल में।

सन् १८७५ के अंत में महाराज एडवर्ड सप्तम जो उस समय इंग्लैंड के युवराज और प्रिंस आफ वेल्स थे हिंदुस्तान के देखने के लिये भारतवर्ष में पधारे। उनके आने के पूर्व ही से खबर पाकर हिंदुस्तान में चारों ओर स्वागत और आतिथ्य सत्कार की तैयारियाँ होने लगी थीं। जंगबहादुर ने पहले से नैपाल में उन्हें लाकर शिकार खेलाने के लिये तैयारी करनी प्रारंभ कर दी और अपने पुत्र जरनल बबरजंग को उनकी अगवानी और स्वागत के लिये और अपने भाई रणोद्दीपसिंह को नैपाल का राजदूत बना कर प्रिंस आफ वेल्स को नैपाल में शिकार खेलने के लिये निमंत्रित करने के लिये कलकत्ते भेजा।

दोनों जरनल काठमांडव से चल कर कलकत्ते पहुँचे। जरनल बबरजंग सैनिक ठाठ बाट से २३ दिसंबर सन् १८७५ को प्रिंस आफ वेल्स से फोर्ट विलियम के नीचे प्रिंसिप घाट पर उनके उतरने के पहले जहाज पर जाकर मिले। प्रिंस आफ वेल्स ने उनका बड़े तपाक से स्वागत किया और महाराज जंगबहादुर का कुशल पूछा।

२७ दिसंबर को नैपाल के प्रधान सेनानायक और राजदूत राणा रणोद्दीपसिंह युवराज से गवर्नमेंट हाउस में मिले और उनसे निवेदन किया कि नैपाल राज्य की यह प्रवल इच्छा है

कि आप पश्चिमी नैपाल के जंगल में शिकार खेलने के लिये पधारें। महाराज जंगबहादुर ने वहाँ आप के शिकार का सब प्रबंध कर रक्खा है और वे वहाँ पर आप के स्वागत के लिये स्वयं उपस्थित रहेंगे। प्रिंस आफ वेल्स ने उनके निमंत्रण को स्वीकर किया और उन्हें अनेक धन्यवाद दिया।

प्रिंस आफ वेल्स हिंदुस्तान की सैर करते हुए १७ फर्वरी १८७६ को कमाऊँ जिले में गुरुनानक की संगत में पहुँचे और उसी दिन महाराज जंगबहादुर ने थापाथाली से आकर गुरुनानक की संगत से थोड़ी दूर पर नैपाल राज्य में बनबासा में पड़ाव डाला। उसके दूसरे दिन १८ फर्वरी को जंगबहादुर ने मिस्टर गर्डलस्टोन साहब को नैपाल राज्य की ओर से प्रिंस आफ वेल्स के लाने के लिये भेजा और स्वयं शारदा नदी पार कर अँग्रेजी अमलदारी में शारदा के किनारे आकर पड़ाव डाला। १९ फर्वरी को प्रिंस आफ वेल्स शारदा नदी के किनारे पहुँचे। यहाँ महाराज जंगबहादुर ने उनका स्वागत किया और वे उन्हें अपने साथ साथ बनबासा ले आए। वहाँ तोपों से उनकी सलामी हुई। महाराज ने प्रिंस आफ वेल्स को उनके डेरे में पहुँचाया और नजर देखाई। उसी दिन दर्बार संगठित हुआ। महाराज ने इंगलैंड में महारानी के सत्कार प्रदर्शन के लिये बड़ी कृतज्ञता प्रकाश की और कहा कि मेरा विचार गत वर्ष फिर विलायत जाने का था, पर वंबई पहुँच कर मुझे घोड़े से गिर कर चोट आ गई इसी लिये विलायत

न पहुँच सका। युवराज ने महाराज की उस सहायता के लिये जो उन्होंने बलवे में अंग्रेजी सर्कार को आड़े समय में दी थी उनको धन्यवाद दिया और कहा कि अंग्रेजी सरकार आप की सदा के लिये कृतज्ञ है और रहेगी। इसके वाद महाराज ने उन्हें दो पालतू सिंह और एक हाथी भेट किया जिसे प्रिंस आफ वेल्स ने धन्यवादपूर्वक स्वीकार किया।

महाराज जंगबहादुर ने युवराज के साथ सोलह दिन रह कर उन्हें बनबासा, महुलिया तथा मूसापानी में शिकार खेलाया और खेदे का तमाशा दिखाया। २ मार्च को प्रिंस आफ वेल्स महारानी से मिले। महारानी ने उन्हें बड़े सत्कार से आसन देकर कुशल प्रश्न पूछा। मिलते समय प्रिंस आफ वेल्स ने कहा था कि महारानी विक्टोरिया ने चलते समय मुझे आप से मिलने के लिये आग्रहपूर्वक आज्ञा दी थी। महारानी नैपाल ने महारानी विक्टोरिया के इस अनुग्रह और स्मरण के लिये धन्यवाद दिया और कहा कि आप कृपा कर हमारा सलाम महारानी विक्टोरिया से अवश्य कह दीजिएगा। प्रिंस वहाँ से अतर पान लेकर चले आए। इस के बाद ४ मार्च को महाराज और युवराज का उनके मुसाहबों समेत फोटो उतारा गया। ५ मार्च को महाराज जंगबहादुर युवराज के डेरे पर उन्हें बिदा करने के लिये गए। युवराज ने डेरे के द्वार पर उनका स्वागत किया और दर्बार में लेजाकर उन्हें उचित आसन पर बैठाया। यहाँ युवराज ने महाराज को अपनी एक

चाँदी की छोटी तस्वीर, कई रायफल और कुछ विलायत के अच्छे कारीगरों के हाथ की बनी हुई चीजें दीं जिसे महाराज ने धन्यवादपूर्वक स्वीकार किया और कहा कि यह हम लोगों का सौभाग्य है कि आप यहाँ पधार कर सोलह दिन तक ठहरे और हम लोगों को अपने दर्शन और सत्संग से कृतार्थ किया। इस के उत्तर में युवराज ने महाराज को उन्हें शिकार खेलाने का कष्ट उठाने के लिये धन्यवाद दिया और चलते समय महाराज के आदमियों और लड़कों को एक एक तलवार और रायफल भेट कीं। दर्बार बंद हुआ। युवराज ने शारदा उतर कर अंग्रेज़ी राज्य में डेरा डाला।

दूसरे दिन जंगबहादुर रणोद्दीपसिंह, धीरशमशेर और जगतजंग आदि को साथ ले कर युवराज से स्वयं उनके लशकर में आकर फिर मिले और तदनंतर थापाथाली चले गए।

३४—अंतिम दिन।

महाराज जंगबहादुर युवराज को बिदा कर के थापाथाली पहुँचते ही ज्वरग्रस्त हो गए। वे थापथाली से गोदावरी गए। वहाँ से लौटने पर नैपाल में एक विलक्षण हलचल मची। गोरखा सेना के एक सैनिक पियादे ने जो किसी अपराध में सेना से बरख़ास्त कर दिया गया था, अपने को लखन थापा का अवतार कह के प्रख्यात कर दिया और वह बहुत से गँवारों को अपना अनुयायी बना कर पंद्रह सौ हथियारबंद जवानों की सेना बना कर चारों ओर ऊधम मचाने लगा। वह गँवारों से यह कहता फिरता था कि मनोकामना देवी ने मुझे वर दिया है और आज्ञा दी है कि तुम जंगबहादुर को मार कर नैपाल में सत् युग का प्रचार करो।

महाराज जंगबहादुर ने यह समाचार पाकर देवीदत्त रेजिमेंट को उस के पकड़ने के लिये भेजा और आज्ञा दी कि जब तक वह लड़ने के लिये हथियार लेकर सामने न आवे हथियार न चलाए जाँय। उस के अनुयायियों ने थोड़ी देर तक तो देवीदत्त सेना का सामना किया पर अंत को जब वे सामना न कर सके तो उन्होंने हथियार रख दिए। सेना ने सब को बंदी कर लिया और वह लखन को उसके बारह प्रधान अनुयायी शिष्यों के साथ बाँस के पिंजड़े में बंद कर के और

शेष को बाँध कर साथ लिए हुए काठमांडव पहुँची। मामल की जाँच होने लगी जिससे ज्ञात हुआ कि उन लोगों का यह गुप्त विचार था कि जब महाराज राजकुमार को लेकर देवराली से होकर जाँय तब उनको आक्रमण करके मार डाला जाय और काठमांडव में लखन को नैपाल के अधिराज के सिंहासन पर अभिषिक्त किया जाय। दर्बार से लखन और उसके शिष्यों को तो फाँसी का दंड दिया गया, पर उनके शेष अनुयायिओं को क्षमा प्रार्थना करने पर छोड़ दिया गया। लखन मनोकामना देवी के मंदिर के पास एक पेड़ में लटका दिया गया और उसने मरते समय अपने अपराधों को स्वीकार किया।

इसी साल मई के महीने में महाराज का पुत्र नरजंग अचानक मर गया। नवंबर में जरनल बबरजंग को यक्ष्मा रोग हुआ और अनेक औषधि करने पर भी उन्हें कुछ लाभ नहीं हुआ। रोग बढ़ता गया और अंत को उनका २७ नवंबर को आर्य्यघाट पर देहांत हो गया। पुत्र और भाई के मरने से महाराज जंगबहादुर के ऊपर शोक पर शोक पड़ा। जरनल बबरजंग एक होनहार वीर पुरुष थे और महाराज जंगबहादुर उन्हें सब से अधिक प्यार करते थे। उनके मरने से उनको बहुत कष्ट पहुँचा और उनके हृदय में गहरा घाव हो गया।

शोक से आतुर हो महाराज जंगबहादुर ८ दिसंबर सन् १८७६ को शिकार के लिये थपाथाली से निकले। सचमुच वह

महाराज जंगबहादुर का अंतिम आखेट था। इस बार उनके साथ उनकी पाँच महारानियाँ–बड़ी महारानी, अंतरी महारानी, दकचोक महारानी, रमरी महारानी और मिश्री महारानी तथा जरनल अमरजंग और बख्तजंग और कर्नल रणसिंह, कप्तान दलभंजन आदि अनेक सैनिक सर्दार थे। महाराज थापाथाली से थानकोट, मरखू तथा सपरींतार होते हुए हिठौरा आए। हिठौरा से महाराज जमुनिया, सिमनगढ़ होते हुए पथरघट्टा पथरघट्टा से वे अधमरा, मगरथान, जनकपुर, धनुखा, कमल नदी, मुरकी नदी, बहुरिया और नयागाँव होते हुए १५ जनवरी सन् १८७७ को बालंग गए। बालंग में पाँच दिन ठहर कर महाराज थापाथाली को लौटे और २० जनवरी को उन्होंने महौलिया में पड़ाव किया।

महौलिया से महाराज रिमडी होते हुए २३ फर्वरी को बहेरी पहुँचे। यहाँ महाराज को अपने प्रिय हाथी जंगप्रसाद के मरने का समाचार मिला। महाराज जंगप्रसाद को अपने पुत्र की तरह मानते थे। जंगप्रसाद के मरने की खबर सुन महाराज के हृदय पर तीसरा आघात पहुँचा। दूसरे दिन २४ फर्वरी को यहाँ महाराज ने एक बहुत बड़ा बाघ * मारा। यह

---

* लोगों का यह कथन है कि यह बाघ नहीं था किन्तु सिंह था। इसके शिकार के लिये महाराज ने हाथियों का झुंड लेकर उसे घेरा था। जब सिंह देख पड़ा तो महाराज ने उस पर गोली चलाई। सिंह गर्ज कर महाराज के हाथी के हौदे पर पहुँचा और महाराज को लिए हौदे से नीचे गिरा। सिंह तो मर गया पर महाराज को इतनी चोट आई कि महाराज फिर अच्छे न हो सके और अन्त को उन्हें इसी आघात से इस असार संसार को छोड़ना पड़ा।

बाघ इतना बड़ा और इतना सुंदर था कि ऐसा बाघ महाराज ने आज तक नहीं देखा था।

दूसरे दिन २५ फर्वरी को गोविंद द्वादशी पड़ी। इस दिन प्रातःकाल महाराज की कूच की तैयारी के लिये बिगुल बजा और तैयारी होने लगी। इसी बीच में महाराज को पेचिस वा रस की बीमारी हो गई। उन को एक दस्त आया और जाड़ा लगने लगा। वे धूप में गर्म होने के लिये बैठे और थोड़ी देर बाद बड़ी महारानी से कहने लगे कि मुझे बड़ा जाड़ा लग रहा है। वहाँ से उठ कर वे डेरे में गए जहाँ उन्हें गर्मी मालूम हुई। डेरे से निकल कर वे बाहर आए, पर बाहर उन्हें बड़ा जाड़ा लगने लगा। महारानी ने उनकी यह अवस्था देख घबड़ा कर कूच रोकने के लिये बिगुल बजवाया और जरनल अमरजंग को बुला भेजा। जरनल अमरजंग के पहुँचते पहुँचते महाराज की अवस्था अधिक खराब हो गई थी। लोगों ने उन्हें पकड़ कर पलंग पर लेटाया। जरनल अमरजंग ने आकर महाराज की यह अवस्था देख उनसे हाल पूछा पर महाराज ने उन को कुछ उत्तर न देकर अपनी एक महारानी से पूछा कि यह कौन है। महारानी ने उनका नाम बतलाया और पूछा कि क्या आप उन्हें नहीं पहचान सकते? तो महाराज ने उत्तर दिया कि मुझे ठीक दिखाई नहीं देता और अब मेरा समय निकट है। इतने में नैपाली वैद्य कृष्णगोविंद आए और उन्होंने नाड़ी देख कर कहा कि नाड़ी सुस्त चल रही है। महारानियाँ रोने लगीं।

बड़ी महारानी अष्टमंडप बनाकर उनके मुँह में पिलाने लगीं पर महाराज के दाँत न खुले। सब लोग घबड़ा कर रोने पीटने लगे। महाराज को तो इधर पालकी में चढ़ाकर सब पथर-घट्टा ले चले, उधर एक आदमी काठमांडव में रणोद्दीपसिंह को महाराज का हाल जताने के लिये और धीरशमशेर और महाराजकुमार त्रैलोक्यविक्रमशाह और उनकी सधर्मिणी को बुलाने के लिये भेजा गया। पथरघट्टा पहुँचते पहुँचते राह में महाराज के मुँह से खून निकला। इससे सब लोग और भी घबड़ा गए। पथरघट्टा में लोगों ने महाराज को पालकी से निकाल कर बागमती के किनारे लेटा दिया। यहाँ वे कई घंटे तक आकाश की ओर ताकते हुए बेसुध पड़े रहे और २५ फर्वरी को आधी रात के समय इस असार संसार को छोड़ परलोक सिधारे।

महाराज का शव तीन दिन तक वहाँ रक्खा रहा और लोग जरनल रणोद्दीपसिंह, धीरशमशेर आदि के आने की प्रतीक्षा करते रहे। तीसरे दिन उनके आने पर पथरघट्टा में बागमती के किनारे चिता रोपी गई और महाराज का शव राजकीय ठाठ बाट से उस पर रख दिया गया। बड़ी महारानी महाराज के शव के साथ चिता पर सती होने के लिये बैठीं और दो और महारानियाँ महाराज की चिता के पास दो चिताओं में बैठ कर सती हुइ।

३५—महाराज जंगबहादुर की फुटकर बातें।

वीर और प्रबंधकुशल होने के अतिरिक्त महाराज जंगबहादुर अत्यंत उदारचरित और न्यायपरायण थे। वे नगरों में रूप बदल कर रात को अपनी प्रजा की अवस्था और सर्कारी कर्मचारियों की सजगता देखने के लिये घूमा करते थे। एक दिन की बात है कि वे नगर में घूमते हुए जरनल खड्गबहादुर के घर पर गए और चुपके से उनकी बैठक में घुस गए और वहाँ से एक तलवार जो खूँटी पर लटक रही थी, लेकर चलते बने। दर्वाजे से निकलते ही चौकीदार ने उन्हें पकड़ लिया और पकड़ कर वह उन्हें जरनल खड्गबहादुर के सामने ले गया। खड्गबहादुर उन्हें देखते ही पहचान कर भौचक हो गए। सिपाही घबड़ाया और उनके पैरों पर गिर कर क्षमा माँगने लगा। इस पर जंगबहादुर ने उससे हँस कर कहा कि "कर्तव्यपालन करने में क्षमा माँगने की क्या आवश्यकता है, मैं तुम्हें कभी क्षमा नहीं करूँगा" और खड्गबहादुर की ओर ताक के कहा कि "मैं ऐसे ही मनुष्यों का आदर करता हूँ। मैंने आज से इसे जमादार किया।"

जैसे वे कर्तव्यपरायण ईमानदार पुरुषों का आदर करते थे वैसे ही अन्यायी और बेईमान पुरुषों के विरोधी थे। एक बार तराई में दौरे के समय उन्हें पता मिला कि किसी क़ाज़ी ने

घूस लेकर न्यायविरुद्ध किसी मुकद्दमे में फैसला कर दिया है। जंगबहादुर ने उसकी उसी दम जाँच की और बात ठीक निकलने पर क़ाज़ी को सदा के लिये पद से च्युत कर दिया।

वे गुणी पुरुषों का सदा मान करते थे और यथा समय छोटे पुरुषों को उनकी योग्यता देख बड़ा आदमी बना देते थे। एक बार सन् १८६० में वे बारूद का कारख़ाना देखने गए। वहाँ उन्हें मालूम हुआ कि कारख़ाने के किसी कारीगर ने बारूद को चमकीला करने की कोई नई युक्ति सोचकर निकाली है। जंगबहादुर ने उसे उसी दम बुलाकर उसकी युक्ति की परीक्षा कराई और ठीक और उपयोगी सिद्ध होने पर उसे एक दम उस कारख़ाने का प्रबंधकर्ता बना दिया।

कट्टर हिंदू होने पर भी उनका विचार कूपमंडूक की तरह संकुचित नहीं था। वे अत्यंत उदार विचार के थे और अन्य मतवालों के साथ भी उनका बर्ताव बहुत अच्छा होता था। एक समय वे नमोधा में पड़ाव डाले हुए थे कि उनके पास अनेक बौद्ध भिक्षु गए और उन्होंने उनसे निवेदन किया कि यहाँ का मंदिर गिर रहा है, यहाँ के विहार की सहायता के लिये जो भूमि नैपाल के प्राचीन महाराजों ने प्रदान की थी, वह अब निकल गई है और वह बड़ी दीन दशा में है। महाराज ने उनसे प्रमाण में प्राचीन राजाओं के दानपत्र और ताम्र फलक आदि माँगे और उन्हें देख कर उस भूमि के वापस

किए जाने की आज्ञा दी और जप्ती के दिन से उस समय तक का मुनाफ़ा उन्हें सर्कारी खजाने से दिला दिया।

एक और घटना है जिससे महाराज जंगबहादुर की उदारता का विशेष परिचय मिलता है। नैपाल में एक अछूत जाति है, जिसे लोग कोची मोची कहते हैं। ये लोग कूच-विहार से आकर नैपाल में बसे थे। एक बार हिंदुओं ने कोची मोची-जातिवालों को बहुत सताया और वे उन्हें कुएँ पर पानी भरने से रोकने लगे। इसका समाचार महाराज जंगबहादुर के पास पहुँचा। महाराज ने एक दर्बार किया और खुले दर्बार में एक कोची मोची के हाथ से पानी मँगा कर और सब के सामने पीकर उन्हें सदा को लिये शुद्ध कर दिया और वहाँ से छूत छात के बैर भाव को दूर किया।

महाराज जंगबहादुर जिस प्रकार युद्ध में वीर और दृढ़-प्रतिज्ञ तथा निर्भय थे उसी प्रकार वे न्याय करने में भी निडर और दृढ़प्रतिज्ञ थे। एक बार वे दौरे पर थे कि फर्राश ने ख़ीमा गाड़ने के लिये एक साखू के छोटे पौधे को काट डाला। दुर्भाग्य वश उसने उसे उठाकर कूड़े के साथ पड़ाव के पास ही फेंक दिया और जंगबहादुर को वह कटा पौधा सवारी से आते हुए वहाँ देख पड़ा। उन्हों ने फौरन उसके काटनेवाले का पता चलाने के लिये आज्ञा दी और सारे ख़ीमे से फ़र्श उठा कर उसकी जड़ की खोज होने लगी। दैववश पौधे की जड़ महाराज ही के ख़ीमे के बीच फ़र्श के

नीचे निकली। जंगबहादुर ने फर्राश का हाथ काटने की आज्ञा दी। लोगों ने उसको बचाने के लिये बहुत प्रार्थना की, जिस पर महाराज ने कहा कि "आईन निरर्थक नहीं हो सकता अच्छा इसका हाथ न काटा जायगा पर इसकी अँगुली की एक पोर काट ली जायगी।"

उनकी निर्भयता का इससे बढ़ कर क्या प्रमाण मिल सकता है कि एक बार उन्हें खबर मिली कि महाराजाधिराज सुरेंद्रविक्रम ने एक उच्च कर्मचारी पर व्यर्थ आक्रमण किया है। जंगबहादुर ने इसकी जाँच की तो उन्हें बात सत्य प्रतीत हुई। वे उसी दम हनुमान ढोके पर गए और उन्होंने महाराजाधिराज को उनके इस अनुचित बर्ताव के लिये समुचित वाग्दंड दिया।

महाराज जंगबहादुर ने यावज्जीवन निःस्वार्थ भाव से अपने देश, राजा और प्रजा की सेवा की और अपने इन सद्गुणों के कारण वे सदा राजा और प्रजा दोनों के प्रीतिपात्र बने रहे। ऐसे कर्म्मवीर पुरुष संसार में बहुत कम उत्पन्न हुआ करते हैं।

मनोरंजन पुस्तकमाला।

अब तक निम्न लिखित पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

(१) आदर्श जीवन—लेखक रामचंद्र शुक्ल।
(२) आत्मोद्धार—लेखक रामचंद्र वर्म्मा।
(३) गुरु गोविंद सिंह—लेखक वेणीप्रसाद।
(४) आदर्श हिंदू १ भाग—ले० मेहता लज्जाराम शर्म्मा।
(५) ,, २ ,, ,,
(६) ,, ३ ,, ,,
(७) राणा जंगबहादुर—लेखक जगन्मोहन वर्म्मा।

छप रही है।

(८) भीष्म पितामह—लेखक चतुर्वेदी द्वारका प्रसाद शर्म्मा।

Printed by C. Y. Chintamani at the Leader Press, Allahabad.